प्राचीन
भारतीय
वेशभूषा

भारत—देश और लोग

प्राचीन भारतीय वेशभूषा

रोशन अल्काजी

अनुवाद

हमीदुल्ला

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

यह पुस्तक लेखिका द्वारा रचित, आर्ट हेरिटेज द्वारा 1983 में प्रकाशित 'एनशेन्ट इंडियन कास्ट्यूम्स' का संक्षिप्त संस्करण है।

आवरण : सांची के स्तूप की वेदिका से

ISBN 81-237-3754-8

पहला संस्करण : 2002 *(शक 1923)*

Ancient Indian Costumes *(Hindi)*

रु. 45.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

यह पुस्तक
मेरे भाई सुल्तान पदमसी की
स्मृति को समर्पित है

विषय-सूची

प्राक्कथन

अत्यंत सहज एवं सुरुचिपूर्ण पोशाक अर्द्धनारीश्वर के रूप में है। शरीर का आधा दायां भाग लगभग उघड़ा हुआ अथवा बाघ की खाल या हाथी के चमड़े से ढका हुआ जिस पर आभूषणों के रूप में रेंगते सर्प हैं, परंतु शरीर के बाईं ओर का भाग सलीके से धारण किए हुए, वस्त्रों तथा आभूषणों से सुसज्जित है। पहाड़ों की राजकुमारी पार्वती हर संभव आभूषण से सजी-धजी तथा भव्य वेशभूषा धारण किए हुए हैं।

यद्यपि वेशभूषा के पीछे मूल भावना शरीर के विभिन्न अंगों को वस्त्रों से ढंकने की रही होगी, इसका तीव्र गति से विकास हुआ तथा वेशभूषा के लिए अपेक्षित सामग्री जुटाने में प्रकृति का भी अपूर्व योगदान रहा। वेशभूषा वर्ष भर एक जैसी नहीं रहती। कालिदास ने इसका विशेष रूप से उल्लेख किया है कि किस प्रकार ग्रीष्म-ऋतु अपने आगमन के साथ राजकुमार की प्रेयसियों को वस्त्र पहनने के ढंग का पाठ पढ़ाती है जिसके अनुसार शरीर के ऊपर के वस्त्र बारीकी से रत्नजटित हों, मोतियों के हार के जंतर नितंबों के मध्य शोभित हों तथा रेशम के वस्त्र इतने कोमल हों कि एक हल्की-सी फूंक से उड़ जाएं : *अथास्य रत्नाग्रथितोत्तरीयमेकान्त पांडुस्तनलम्बिहारम, निः श्वासहायशुिकमाजगम धर्मः प्रिया वैषभिवोपदेष्टुम ।।* **रघुवंश 16:43**

शरद ऋतु के वस्त्र भिन्न होते हैं, जब राजकुमार मनोहारी कटियों वाली नवयौवनाओं के आनंदित होते हुए उनके कूल्हों के रेशमी वस्त्रों से आकर्षित हो उन्हें बांधने-खोलने की क्रीड़ा करता है जिनपर से हाथ सहज ही फिसल जाते हैं। ये वस्त्र विशेष रूप से शरद ऋतु के लिए बनाए जाते थे। लोबान की सुगंध से सुवासित इन वस्त्रों के सोने के कटिबंध दिखाई देते थेः *मर्मररगुरू धूपगन्धिभिर्व्यक्त हेमरशनेस्तमेकतः । हरुराग्रथनमोक्षलोलुप हेमने र्निवसनेः सुमध्यमाः ।* **रघुवंश 19:41**

इससे इस बात का बोध होता है कि भारत जैसे उष्णकटिबंधीय-देश में वेशभूषा लगभग हर कुछेक महीनों के बाद बदल जाती है। धूप-सी उजली इस मनोहारी धरती के सुंदर रूप में आभूषण और वस्त्र सौंदर्य की छटा बिखेर देते हैं, चाहे कालिदास व्यंग्य में इससे इंकार करें कि "सुंदर काया के लिए ऐसा क्या है जो उसकी शोभा

नहीं बढ़ाता'', *किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतिनाम* **अभिज्ञानशाकुन्तलम 1:18**

सुंदर काया से अलग, पहनावा एक बड़ा घटक था। पहनावे से विभिन्न वर्गों, भिन्न-भिन्न व्यापार और व्यवसायों, जीवन के विभिन्न आयु-स्तरों तथा मानस के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान होता था। ब्रह्मचारी, शिष्य तथा यति अथवा तपस्वी ही ऐसे थे जो आभूषण-रहित अति साधारण तथा सादा वस्त्र धारण करते थे।

प्राचीन भारतीय वेशभूषा स्वयं में एक महान विषय-वस्तु है। यह हमें केवल इस कारण से प्रेरित नहीं करती कि हमारा साहित्य वर्णन में समृद्ध है बल्कि इसलिए भी कि मूर्तिकला और चित्रकला ने इस संबंध में हमें बहुत कुछ दिया है।

श्रीमती रोशन अल्काजी ने प्राचीन भारतीय वेशभूषा का प्रारंभिक समय से गुप्तकाल के अंत तक का विस्तृत अध्ययन किया है। उन्होंने हमारे महान उपमहाद्वीप के एक-सिरे से दूसरे सिरे तक के आभूषणों तथा वेशभूषाओं को छान डाला है, बड़ी संख्या में प्राचीन मूर्तियों के चित्र दिए हैं तथा उनकी विविधता को स्पष्ट करने के लिए उनके समर्थन में विशेष रूप से तैयार किए गए, रेखाचित्र भी दिए हैं। पुस्तक में दिए गए प्रत्येक रेखाचित्र एवं चित्रों को उन्होंने विस्तार से अभिव्यक्त किया है। उन्होंने विभिन्न स्थानों का अध्ययन किया है तथा भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों को वर्गीकृत कर उनके नक्शे दिए हैं। उन्होंने धैर्यपूर्वक लंबे समय तक यह कार्य किया है। मेरे लिए यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि निष्ठापूर्वक किया गया उनका यह कार्य अब पूर्ण हो गया है, और हमें 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' के रूप में एक सुंदर पुस्तक उपलब्ध हुई है। भारतीय संस्कृति से प्रेम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस पुस्तक का स्वागत करेगा, ऐसा विश्वास है।

नयी दिल्ली
मार्च 30, 1982 सी. सिवारामामूर्ति

यह प्राक्कथन लेखिका की पुस्तक प्राचीन भारतीय वेशभूषा के मूल संस्करण से उद्धृत किया गया है।

प्रस्तावना

भारत के इतिहास पर भौगोलिक, जलवायु-संबंधी तथा जातीय कारणों का अत्यंत प्रभाव रहा है जिनके फलस्वरूप जनसाधारण की वेशभूषा भी प्रभावित हुई है। एशिया महाद्वीप से आस्थगित, उत्तर में हिमालय से बंधा तथा अन्य दो ओर से समुद्र से घिरा होने से भारत की आकृति ऐसी है जो उसे पर्याप्त रूप से अलग करती है और यही कारण है कि परिवर्तन की लहर की गति यहां अत्यधिक धीमी रही है। भारत में भू-मार्ग द्वारा प्रवेश केवल उत्तर-पश्चिम के विभिन्न भू मार्गों से संभव था। भारत में सांस्कृतिक विभाजन उत्तर तथा पश्चिम के उपजाऊ भू-भाग में अपनी सहायक नदियों के साथ बहने वाली दो महान नदियों, सिंधु और गंगा के द्वारा हुआ है। मध्य में दकन के पठार ने पश्चिमी घाट व पूर्वी समुद्रतट पर समान पर्वत शृंखलाएं जो नीचे मिलकर नीलगिरी पहाड़ियों का रूप लेती हैं, दक्षिण भारत को सीमाबद्ध कर दिया है जिससे वह अपनी पृथक सांस्कृतिक पहचान बनाए रख सका है।

यह पुस्तक चार काल-खंडों में प्रचलित वेशभूषाओं का अध्ययन है—मौर्य-शुंग (321-72 ईसा पूर्व) सातवाहन (200 ईसा पूर्व से 250 ई.), कुषाण (130 ई.पू. से 185 ई.) तथा गुप्त काल (आरंभिक चौथी-मध्य शती से आठवीं शती ईसा पूर्व)। दो प्रमुख स्रोत जिनसे वेशभूषाओं का ऐतिहासिक पुनः कल्पन किया जा सकता है, साहित्यिक एवं पुरातत्वीय स्रोत हैं। विश्वसनीयता की दृष्टि से यह उपयुक्त है कि अपने अधिकांश साक्ष्यों को पुरातत्वीय अवशेषों पर आधारित रखा जाए क्योंकि वस्त्रों के साहित्यिक विवरण अस्पष्ट, अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रमित करने वाले हो सकते हैं। पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में काल विशेष का संक्षिप्त सामाजिक इतिहास, उसकी वेशभूषाएं, शिरोवस्त्र और केश-विन्यास, आभूषण तथा रंगाई और छपाई का उल्लेख है। धार्मिक एवं सैन्य वेशभूषाओं पर भी कुछ बल दिया गया है। चूंकि प्रत्येक काल की कला की चाक्षुष शैली उस काल में प्रचलित वेशभूषा का सार प्रस्तुत करती है, इस पर एक संक्षिप्त टिप्पणी जोड़ी गई है।

चित्रों का चुनाव प्रत्येक काल में पहने जाने वाली वेशभूषाओं की विविधता

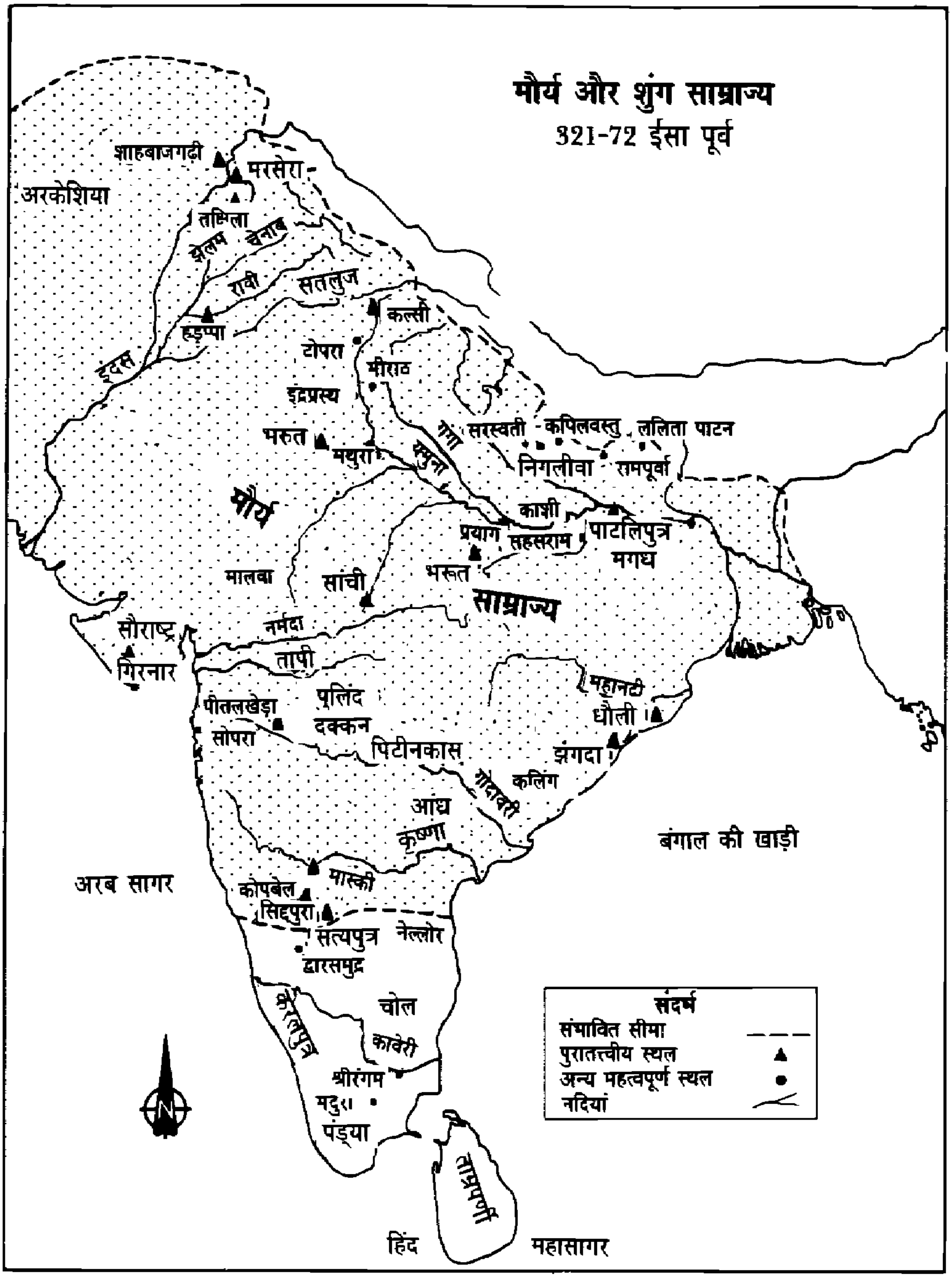
दर्शाने के लिए किया गया है। ऐसा प्राचीन भारत में विकसित एवं परिवर्तित वस्त्रों के पुनः कल्पन को युक्तिसंगत बनाने की दृष्टि से किया गया है। रेखाचित्रों में वस्त्रों के क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट करने तथा उनके महत्व पर बल देने के लिए बाहरी प्रभावों को हटाते हुए प्राचीन प्रतिमाओं के टूटे हुए अंशों अथवा रेखाचित्रों में रेखा जोड़कर यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि अमुक काल विशेष में मानव शरीर पर किस प्रकार वस्त्र धारण किए जाते थे तथा किन तत्वों से उनका निर्माण किया जाता था। चित्रों के दृष्टांतों के साथ ही संक्षिप्त लिखित विवरण है जिसमें यथासंभव उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यदा-कदा ऐसी अंग्रेजी पदावली का भी प्रयोग किया गया है, जिसमें नितांत शैक्षिक दृष्टि से कालदोष प्रतीत हो सकता है, जैसे वस्त्र पहनना, पेटी और कुरता। परंतु ऐसा सरलीकरण एवं स्पष्टता के लिए किया गया है ताकि शब्द-पांडित्य से बचा जा सके जो अक्सर पाठक को भ्रमित करता है।

यह ग्रंथ बिना किसी दुरुह संदर्भों अथवा विशिष्ट तकनीकी शब्दावली के पर्याप्त संदर्भ सामग्री को सरल रूप में तत्काल सुलभ कराने का एक प्रयास है। साधारण-जन के अतिरिक्त जिनके लिए यह संक्षिप्त संस्करण मुख्यतया तैयार किया गया है, चित्रकार, कला के विद्यार्थी, फैशन रूपांकनकार तथा फिल्मों, टेलीविजन और रंगमंच के वेशभूषाकार एक काल विशेष की वेशभूषा की जानकारी इस पुस्तक से प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं उन सभी विद्वानों की आभारी हूं जिनके परिश्रम से रचित ग्रंथ मेरी प्रेरणा का स्रोत रहे हैं। मैं श्याम चोपड़ा, उत्तरा बावकर, नीता गंगोपाध्याय और रोहिणी परोंग के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने इस पुस्तक के मूल संस्करण को पूरा करने के लिए वर्षों तक रेखाचित्रों पर एक बार ही नहीं अपितु बार-बार कार्य किया है।

मौर्य और शुंग काल

(321-72 ईसा पूर्व)



मौर्य और शुंग साम्राज्य
321-72 ईसा पूर्व
शाहबाजगढ़ी
मरसेरा
अरकेशिया
तक्षिला
झेलम
चेनाब
रावी
सतलुज
कल्सी
हड़प्पा
इंदस
टोपरा
मीरठ
इंद्रप्रस्थ
गंगा
सरस्वती
कपिलवस्तु
ललिता पाटन
भरुत
मथुरा
यमुना
निगलीवा
रामपूर्वा
मौर्य
काशी
प्रयाग
सहसराम
पाटलिपुत्र
मगध
मालवा
सांची
भरूत
साम्राज्य
सौराष्ट्र
नर्मदा
गिरनार
ताप्ती
महानदी
पीतलखेड़ा
पुलिंद
दक्कन
धौली
सोपरा
पिटीनकास
झंगदा
गोदावरी
कलिंग
आंध्र
कृष्णा
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
मास्की
कोपबेल
सिद्दपुरा
सत्यपुत्र
नेल्लोर
द्वारसमुद्र
केरलपुत्र
चोल
कावेरी
श्रीरंगम
मदुरा
पंड्या
ताम्रपर्णी
हिंद
महासागर
संदर्भ
संभावित सीमा
पुरातत्त्वीय स्थल
अन्य महत्वपूर्ण स्थल
नदियां

मौर्य और शुंग काल
(321-72 ईसा पूर्व)

वेशभूषाओं के महत्व के मुख्य पुरातत्वीय स्थल

- भरहुत
- सांची
- पीतलखोड़ा (दकन)

इतिहास और सामाजिक जीवन

इस युग ने भारत के पहले महान साम्राज्य का उदय देखा। मौर्य साम्राज्य की स्थापना के ठीक पूर्व जब सिकन्दर ने पंजाब में प्रवेश किया, तो उसकी दृष्टि अपने विशाल व्यापारिक संसाधनों के विकास पर थी। बेबीलोन के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हो चुके थे और चीन, फारस एवं भारत के बीच अनेक सांस्कृतिक आदान-प्रदानों का सिलसिला जारी था। सिकन्दर ने अपने मार्ग पर अनेक व्यापारिक चौकियां स्थापित कर दी थीं और वह अपने पीछे यूनानी उपनिवेश छोड़ गया जिन्होंने अंततया भारतीयों के साथ विवाह संबंध स्थापित किए। स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेल्यूकस की राजकुमारी से विवाह किया।

चन्द्रगुप्त मौर्य संपन्न राज्य का स्वामी था। उसके समय में उत्सवों के अवसर पर निकलने वाले जुलूसों में चांदी-सोने के हौदों से सजे हाथी, चार घोड़ों वाले रथ और बैलों की जोड़ियां हिस्सा लिया करती थीं। नगरों के लोग रत्नजटित मलमल व जामदानी के वस्त्र पहना करते थे। राजप्रासाद वास्वत में अत्यंत भव्य और विलासितापूर्ण हुआ करते थे। शान-औ-शौकत वाले ईरानी तर्ज के इनके कमरों के ऊंचे सुनहरी खंभों पर अंगूर की बेलों और रजत पक्षियों की नक्काशी होती थी। ये राजप्रासाद छायादार वृक्षों के सुंदर उद्यानों में स्थित होते थे। विविधता की दृष्टि से उद्यानों के अनेक वृक्ष आयातित होते थे। मछलियों से भरी कृत्रिम झीलों में नौकायन उस समय का एक लोकप्रिय खेल था।

यह संपन्नता का युग था। दरिद्रों के लिए भी यह समृद्धि का युग था क्योंकि कृषि भूमि उपजाऊ थी। उस समय की मूल फसलें चावल, जौ, गेहूं, बाजरा और गन्ना थीं। स्वर्ण और चांदी-सहित धातुओं का खनन किया जाता था। राज्य द्वारा नागरिकों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान किया जाता था। राज्य की ओर से सड़कों का रखरखाव किया जाता था तथा तालाब और कुओं की व्यवस्था होती थी। ये सभी कार्य जनसाधारण में कल्याण की भावना जागृत करने में सहायक होते थे। वैदिक काल की भांति ही पशुपालन तब भी महत्वपूर्ण था तथा दुग्ध उत्पादनों के अतिरिक्त खाल, चमड़ा, सींग, बाल और ऊन उपलब्धि का साधन थे, जिनका उपयोग विभिन्न उद्योग धंधों में किया जाता था।

उस समय महाराष्ट्र की तट रेखा के साथ-साथ मलाबार समुद्र तट, तमिल इलाके और बंगाल के बंदरगाहों से पानी के जहाज से व्यापार होता था। मध्य एशिया और चीन होकर गुजरने वाले प्राचीन रेशम-मार्ग से जुड़ने के लिए भू-मार्गों का विस्तार किया गया था तथा अधिक लाभ की कामना में लंबे कारवां जोखिम-भरी यात्राएं किया करते थे।

वेशभूषा

वैदिक युग की भांति पुरुष और स्त्री तीन बिना सिले वस्त्र पहनते थे। मुख्य वस्त्र अंतरीय होता था, जो सफेद सूती कपड़े, मलमल या जामदानी का होता था। कभी-कभी अंतरीय पर कशीदाकारी की हुई होती थी या यह रत्नजटित हुआ करता था। पुरुषों का अंतरीय बिना सिले लंबे कपड़े का होता था जो कूल्हों के चारों ओर लिपटा होता था और टांगों के बीच कमर से पिंडली अथवा टखनों तक फैला हुआ कच्छे की भांति बंधा होता था। किसान और साधारण नागरिकों द्वारा पहने जाने वाला अंतरीय टखनों से थोड़ा ऊपर होता था। यह अंतरीय कमर पर कमरबंद या कायबंद से कसकर बांधा जाता था। प्रायः कायबंद कमर के सामने के मध्य भाग में फंदे की गांठ से बांधा जाता था। कायबंद साधारण कमरबंद, वीथिका होता था जिसमें दोनों ओर चमड़े की गांठें होती थीं, जिन्हें 'मुरज' कहते हैं। 'मुरज' या 'पट्टिका' एक अलंकृत, चौड़ी चमड़े की पट्टिका होती थी, जिस पर कशीदाकारी की हुई होती थी। इसमें अनेक कलाबे के इजारबंद होते थे। तीसरे प्रकार के वस्त्र 'उत्तरीय' कहलाते थे। 'उत्तरीय' बढ़िया सूती कपड़े का वस्त्र होता था, जो बिरले ही रेशम का होता था और जिसका उपयोग शरीर के ऊपरी भाग को गुलूबंद की तरह ढांपने के लिए किया जाता था।

पहनने वाले की सुविधा के अनुसार 'उत्तरीय' विभिन्न प्रकार से पहना जाता था : राजदरबारी 'उत्तरीय' बहुत ही सुरुचिपूर्ण ढंग से पहनते थे। वे इसे अपने दोनों अथवा एक कंधे पर डाल लेते थे या वक्ष पर तिरछा डालकर कमर पर साधारण गांठ लगा लिया करते थे। कोहनी और कलाई के सहारे यह पीठ के पीछे बंधन मुक्त भी पहना जाता था। परंतु श्रमिक वर्ग तथा शिल्पियों के लिए उत्तरीय एक उपयोगी वस्त्र था जिसे वे धूप से बचाव के लिए अपने सिर के चारों ओर बांध लिया करते थे या अपनी कमर से बांध लेते थे। इस प्रकार उनके हाथ अपने कार्य के लिए खाली रहते थे। अपने चेहरे से पसीना पोंछने के लिए तौलिये के रूप में भी वे इसका उपयोग करते थे। समाज के निर्धन वर्ग के लिए इसके अनेक उपयोग थे। इनका उत्तरीय मोटे सूती कपड़े का होता था।

महिलाएं अपने अंतरीय कई तरह से बांधती थीं। प्रारंभ में यह अपारदर्शी होता था। परंतु बाद में अधिकाधिक पारदर्शी होता गया। एक साधारण छोटा-सा अंतरीय अथवा कपड़े की पट्टी 'लंगोटी' मध्य में सामने कायबंद से जुड़ी होती थी जो 'टांगों से बीच से निकालकर तह की होती थी। 'अंतरीय' का बड़ा रूप घुटनों तक लंबा होता था जिसे पहले कमर के चारों ओर कसकर बांधा जाता था तथा उसके बड़े भाग में चुन्नट डालकर सामने समेट लिया जाता था। उसके छोटे भाग को 'कच्छा' शैली में टांगों के बीच से निकालकर कमर के पीछे समेट लेते थे। इसके पहनने का एक और ढंग 'लहंगा' शैली में था। पूरे कपड़े को कूल्हों के चारों ओर नाड़ेदार लहंगे के रूप में बांधा जाता था। यह टांगों में 'कच्छा' के रूप में नहीं पहना जाता था।

उच्चवर्गीय महिलाओं के उत्तरीय सामान्यतया झीने कपड़े के होते थे जिनकी किनारी सजावटी होती थी और इन्हें सिर के दुपट्टे के रूप में पहना जाता था। उन महिलाओं के कायबंद पुरुषों के जैसे ही होते थे। इसके अतिरिक्त वे कभी-कभी पटका भी पहनती थीं। पटका सजावटी कपड़े का होता था जो कमर के सामने एक सिरे पर कायबंद से लपेटा जाता था। पटका चुन्नटदार अथवा बुनी हुई ऊन, सूती कपड़े, सूत अथवा चमड़े का होता था जो बहुधा बुना हुआ भी होता था।

यद्यपि वैदिक साहित्य में जूतों का प्रायः उल्लेख आया है, परंतु इस काल की मूर्तिकला से इसका कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है। सैनिक ईरानी ढंग के जूते पहनते थे, जो अपवाद हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि बौद्ध स्तूप अथवा विहार में जूते अंदर नहीं ले जाए जा सकते थे तथा बौद्ध स्तूपों की मूर्तिकला में जूतों का अंकन नहीं है।

अधिक दूरस्थ गांवों और जंगलों में गड़रिए, शिकारी तथा ऐसे ही व्यवसाय

करने वाले अधिकतर व्यक्ति आदिवासी अथवा किसी निम्न जाति के थे। ये सामान्यतया साधारण किस्म के सादे मोटे कपड़े के बने अंतरीय और पगड़ियां पहना करते थे जैसा कि आज भी पहनते हैं। उन दिनों गोदने गुदाने की प्रथा भी आम थी। अधिक पुरातन जनजातियां, जो जंगलों में वास करती थीं, घास, खाल अथवा रोएंदार चर्म से बने वस्त्र पहनती थीं।

शिरोभूषण और केश-विन्यास

महिलाएं सामान्यतया अपने सिर उत्तरीय से ढका करती थीं जिसे वे सीधा या तिरछा ओढ़ा करती थीं। ये उत्तरीय प्रायः चमकदार सजी हुई सुंदर किनारियों के होते थे। उनके केश मांग के रूप में मध्य में दो भागों में विभक्त होते थे और एक या दो चोटियां पीछे की तरफ एक बड़ी गांठ से गुंथी होती थीं। उत्तरीय को साधारण ढंग से इस प्रकार से भी ओढ़ा जाता था कि वह पीछे लटका रहता था या सिरबंद के सहारे सिर पर रहता था अथवा उसका एक पल्लू सिर पर पंखाकार में फैला होता था। उत्तरीय को यथास्थान बनाए रखने के लिए माथे की टोपियां पहनी जाती थीं अथवा कभी-कभी वे झब्बों और फुंदनों से भी सजाई जाती थीं। फिरंगी महिलाओं को, जो संभवतया सम्राट के अंगरक्षक के रूप में कार्य करती थीं, सिर पर कंटोपा पहने भी देखा गया है। ये वीरांगनाएं कसे हुए पायजामों के साथ लंबी आस्तीन के कुरते तथा कानों के पल्ले वाली शंकुरूप फिरंगी टोपी पहनती थीं। भारत में वीरांगनाएं कवच और तलवार के साथ वक्ष पर धातु के बकसुओं वाली तिरछी पेटियां बांधती थीं। महिलाएं कभी-कभी सजावटी कपड़े की पगड़ियां भी पहनती थीं।

जहां तक पुरुषों के शिरोवस्त्र का संबंध है, मौर्य काल के प्रारंभ में पगड़ी जैसी वस्तु नहीं थी परंतु शुंग काल में पुरुषों के ऐसे शिरोवस्त्र अधिक दिखाई देते हैं। ये शिरोवस्त्र दर्शनीय होते थे जिनमें सिर के बाल वेणी में पगड़ी के साथ गुंथे होते थे। इस मुड़ी हुई वेणी का जूड़ा सामने अथवा सिर की ओर बना होता था। परंतु यह जूड़ा सिर के बीच में ऊपर की ओर नहीं होता था क्योंकि ऐसा जूड़ा केवल पुरोहित ही बांधते थे। पगड़ी को यथास्थान बनाए रखने के लिए कभी-कभी एक फीते का उपयोग भी किया जाता था। इसके अलावा रत्नजटित झालर जैसी सजावटी वस्तु पगड़ी में लगाई जाती थी अथवा उसका एक सिरा पंखे की भांति चुन्नट देकर मोड़ दिया जाता था।

आभूषण

जैसा कि मौर्य कालीन मूर्तियों से स्पष्ट है, उस समय स्त्री-पुरुष दोनों ही बहुमूल्य और भारी आभूषण पहनते थे। इसके पूर्व के आभूषणों की गढ़ाई घटिया और गुणवत्ता निम्न कोटि की होती थी। शुंगकालीन आभूषण सुरुचिपूर्ण होते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और तत्कालीन मूर्तिकला में हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस समय आभूषणों की गढ़ाई में मूल्यवान धातु सोना, चांदी, कीमती पत्थर जैसे मूंगा, माणिक, नीलम, पन्ना व बिल्लौर का प्रयोग होता था। मोतियों का उपयोग भी किया जाता था तथा हर प्रकार की मालाएं जिनमें कांच की मालाएं भी सम्मिलित हैं, बहुतायत से उपलब्ध थीं। कुछ ऐसे आभूषण भी थे जो स्त्री और पुरुष दोनों ही के द्वारा समानरूप से पहने जाते थे जैसे कान की बालियां, हार, बाजूबंद, कंगन तथा कशीदाकारी के पट्टे। कान की बालियां अथवा कर्णिका तीन प्रकार की थीं—साधारण बाली जिसे 'कुंडल' कहते थे, वृत्ताकार बाली 'देहरी' तथा फूलों के आकार का 'कर्णफूल'।

दो प्रकार के हार पहने जाते थे—छोटा जिसे 'कंठा' कहते थे और जो चौड़ा और चपटा होता था। यह प्रायः सोने का होता था और इसमें कीमती पत्थर जड़े होते थे। दूसरे प्रकार का कंठा लंबा होता था जो लंबनम कहलाता था। ये जंजीर या मालाएं कभी-कभी तीन से सात लड़ियों की होती थीं तथा जितनी लड़ियों की होती थीं उसके अनुसार ही उनका नामकरण होता था। मालाओं की प्रत्येक लड़ी के मध्य में अशुभ शक्तियों को दूर भगाने के लिए एक जंतर होता था। बाजू के ऊपर सोने अथवा चांदी के बाजूबंद पहने जाते थे जिनमें प्रायः कीमती पत्थर जड़े होते थे। पुरुषों के कंगन प्रायः वर्गाकार अथवा गोलाकार मालाओं के होते थे तथा उनके कपड़ों के पट्टों पर बढ़िया कशीदाकारी की हुई होती थी। इसके अतिरिक्त स्त्रियां कमरबंद पहनती थीं जिन्हें 'मेखला' कहा जाता है। मेखला कूल्हे की कनकती होती थी जो अनेक फीतों की माला होती थी। ये मुख्यतया कक्ष के लाल बीजों से बनाई जाती थीं परंतु अब ये सोने तथा चांदी की मालाओं से गोलाकार, चौकोर व अंडाकार बनाई जाने लगी हैं। नृत्य करने वाली नृत्यांगनाएं कनकती में सोने और चांदी की जंजीर बांध लेती थीं जिनमें घुंघरू बांधे जाते थे। पायल तथा अंगूठियां लगभग सभी स्त्रियां पहनती थीं। अंगूठियां प्रायः सादी होती थीं तथा उन्हें उंगलियों के पोरों पर एक सीध में पहना जाता था। मौर्य काल में पायल अकसर सोने की होती थीं यद्यपि उन दिनों चांदी पहनना भी आम बात थी। पायल या तो साधारण कड़े के रूप में होती थी, या एक मोटी जंजीर जिसे 'संकला' कहा

जाता है अथवा गोलाकार आभूषण जिसमें घुंघरू बांधे जाते थे।

उस काल में नाक में आभूषण पहनने का साक्ष्य नहीं मिलता। स्त्रियों द्वारा ललाट पर आभूषण पहनना एक सामान्य बात थी। ललाट के ये आभूषण पेशानी के मध्य में बालों की मांग के नीचे पहने जाते थे। यह पतली स्वर्ण अथवा रजत-जटित पट्टिका होती थी। यह भिन्न प्रतिरूपों तथा तारों के स्वरूप में सितारा, बीना तथा एक छोटे आभूषण बिंदी के रूप में होती थी।

मौर्य काल के आभूषणों की केवल मात्र भौतिक साक्ष्य कानों की एक बाली है जो तक्षिला में खुदाई में मिली है तथा जो ईसा पूर्व दूसरी शती की है। यह ग्रीको रोमन तथा एत्रूस्कन आभूषणों के समरूप है।

सैन्य वेशभूषा

मौर्य सैनिकों की सिली हुई वेशभूषा बहुत कुछ ईरानी सैनिकों जैसी होती थी। इसमें आस्तीन वाला कुरता होता था जिसपर तरकश के लिए वक्ष पर तिरछी-आड़ी पट्टियां होती थीं तथा तलवार के साथ चमड़े की पट्टी होती थी। अधोवस्त्र ईरानी पतलून की बजाय लगभग भारतीय उत्तरीय जैसा होता था। शिरोभूषण पगड़ी अथवा सिरबंद होता था जबकि फारस के सैनिक नोकदार टोपी पहनते थे। वेशभूषा का यह विदेशी और देशी संगम बहुत दिलचस्प कहा जा सकता है क्योंकि भारतीय वेशभूषा के क्रमिक विकास का यह आरंभिक दौर था। उत्तर में ठंडे मौसम में इसका चलन सैनिकों के लिए अधिक उपयुक्त था क्योंकि ईरानी वेशभूषा मौसम तथा व्यवहारिक दृष्टि से अधिक सुविधाजनक थी। यद्यपि अर्थशास्त्र में कवच का उल्लेख है, उस काल का कोई चाक्षुस प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

धार्मिक व्यक्ति

हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों में हिन्दू धर्म ही ऐसा है जिसका उदय वैदिक स्रोतों से हुआ है तथा जिसमें यज्ञ एक प्रमुख धार्मिक अनुष्ठान है। इस धर्म के रक्षक ब्राह्मण पुजारी हुआ करते थे जो, जैसा कि बाद में प्रकाश में आया, जाति प्रथा में उच्च कुलीन थे। ये ब्राह्मण स्त्री-पुरुष अपने जीवन के अंत काल से पूर्व दुनियादारी से विलग हो जाने के लिए साधु-संन्यासी हो जाया करते थे।

ये ब्राह्मण साधु, तपस्वी का जीवन निर्वाह करते थे। ये या तो आश्रम में वास करते थे अथवा पवित्र धार्मिक स्थलों के दर्शन करने में अपना समय

व्यतीत करते थे। यह साधु घाघरा-नुमा वस्त्र धारण करते थे जो सिली हुई पट्टियों से बना होता था। इसे कमर से एक नाड़े से बांधा जाता था। एक छोटा समकोणीय लबादा बाएं कंधे तथा वक्ष पर डाला जाता था। दायां कंधा खुला रहता था। बाल और दाढ़ी बढ़ाने का प्रचलन था। बालों को गूंथकर सिर के ऊपर एक कुंडली बनाई जाती थी। कभी-कभी वे टोपी के रूप में शिरोभूषण भी पहनते थे। तपस्विनी स्त्रियां भी लबादा तथा टोपी जैसे वस्त्र पहनती थीं। ये वस्त्र प्रायः वृक्षों के पत्तों अथवा छाल से बनाए जाते थे और इन्हें एक नाड़े से बांधा जाता था। छाल के ये वस्त्र आज भी उड़ीसा में कुम्बीपट्टा संप्रदाय द्वारा पहने जाते हैं। मृग तथा बकरी की खाल जिसे 'अजिन' कहते हैं, का उपयोग एकांतवासी तथा वनवासी तपस्वी 'मुनि' द्वारा अपने वक्ष को ढांपने के लिए किया जाता था। पुरुष तपस्वी अपने नाखून, बाल और दाढ़ी के बाल नहीं काटते थे तथा अपने दैनिक उपयोग की सामग्री जुए की टोकरियों में लेकर चलते थे जो उनके कंधों पर रखा होता था।

बौद्ध धर्म में जिसे गौतम बुद्ध (जिनका जन्म ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में हुआ था) ने स्थापित किया, जाति विभाजन नहीं था। इस धार्मिक क्रम में भिक्षु और भिक्षुनी होते थे जिन्होंने बौद्ध मठों की स्थापना की। इन मठों में वे अपने धर्म का अध्ययन करते थे तथा शेष समय में अपने धर्म का प्रचार व भिक्षाटन करते थे।

बौद्ध मठवासी सामान्यतया अपना सिर और दाढ़ी मुंडाते थे परंतु अपने सिर को शिरोवस्त्र से ढकते थे। यदि बाल नहीं मुंडाते थे, तो बालों में सिर पर एक गांठ बांध लेते थे। सहायक धर्मसंघी अपने बालों की गांठ सिर के सीधी ओर बांधते थे। उनका पहनावा सामान्य उत्तरीय के साथ अंतरीय तथा एक बड़ी चादर होता था। ये सभी वस्त्र केसरिया रंग के होते थे। बौद्ध भिक्षुओं के पास अपने उपयोग की बहुत कम सामग्री होती थी। उनके कपड़े चिंदियों को जोड़ कर बनाए जाते थे जो लाल या पीले रंगों में रंगे होते थे। इनमें एक अधोवस्त्र 'अंतर', एक ऊपर का वस्त्र 'उत्तरसंग', एक लबादा 'संघटी,' एक कमर का कपड़ा कुशालका तथा एक बक्कल वाला बेल्ट होता था। घिसे हुए चमड़े के जूते होते थे जिनके तलवे तसमों से उनके पैरों से बंधे होते थे। यही उनकी पोशाक थी। भिक्षाटन के लिए एक पात्र, एक उस्तरा, बाल साफ करने के लिए एक चिमटी, पैर व हाथ की उंगलियों के नाखून काटने के लिए कैंची, कान और दांत साफ करने व कुरेदने के लिए एक कान कुरेदनी, पीने का पानी छानने के लिए छलनी, एक सूई, हाथ की छड़ी, एक छतरी, पंखा तथा औषधियों का थैला, यही सब

उनकी कुल संपत्ति होती थी।

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में जन्मे भगवान महावीर जैन धर्म के प्रवर्तक थे। इस धर्म का मूल सिद्धांत अहिंसा है। तत्पश्चात इसमें दो वर्ग बन गए। पहला वर्ग दिगम्बर कहलाया, जो वस्त्रहीन रहते हैं। दूसरा वर्ग श्वेताम्बर है, जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। दोनों ही वर्गों में मुनि एवं साध्वी होते हैं जो धर्म प्रचारक के रूप में कार्य करते हैं।

जैन मठवासी मुनि एवं साध्वी श्वेत वस्त्र पहनते हैं जिसमें एक लंबी चादर और लुंगी होती है। अपने मुख और नाक पर वे एक महीन कपड़ा, मुंह-पट्टी रखते हैं जिससे उनकी सांस के साथ मुंह अथवा नाक में छोटे से छोटा जीव भी नहीं जा सके और इस प्रकार कोई जीव-हत्या नहीं हो सके। उनके सिर और दाढ़ी के बाल एकदम साफ करा दिए जाते हैं। अधिकांश मुनि एवं साध्वी धर्म प्रचारक का जीवनयापन करते हैं। ये दूरगामी पैदल यात्राएं करते हैं। ये अपने भोजन के लिए भिक्षाटन पर निर्भर रहते हैं। जैन मुनि अपने शरीर पर भभूत रमाते हैं, शांत रहने की शपथ लेते हैं, छाल से बनी चादर और लुंगी पहनते हैं तथा तीन गांठों वाली एक छड़ी साथ लेकर चलते हैं। वे पीतल के छल्ले और चूड़ियां पहनते हैं। उनकी अन्य वस्तुओं में पानी का जग, चिकनी मिट्टी का कटोरा, एक टोटीदार पात्र, झाड़ू, चिमटा, जपमाला तथा एक भिक्षा पात्र होता है।

वस्त्र उद्योग और रंगाई-छपाई

मौर्य काल में महीन और मोटे कपड़े की बुनाई होती थी। सूती, रेशमी, ऊनी, लिलेन तथा टाट से बने वस्त्र सहज सुलभ थे। फर तथा ऊन की बेहतर किस्म के वस्त्र, रेशम जैसे टसर जिसे 'केशिया' कहते हैं (जो असम के इरि अथवा मूगा रेशम जैसा होता है) अपने प्राकृतिक स्वरूप में पीले-से रंग का परंतु विरंजित होने पर पतरूना कहलाता था, का उपयोग होता था। कैशियिका (उच्च कोटि का सूती कपड़ा या रेशम) तथा गांधार के चमकीले लाल ऊनी कंबल, प्रत्येक का मूल्य किसी छोटे खजाने से कम न था। नेपाल में वर्षा-रोधक सूती कपड़ा उपलब्ध था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने वाले यूनानी आगंतुकों ने भी कपड़े पर की जाने वाली पक्की रंगाई तथा हाथ की छपाई का उल्लेख किया है। भारतीय चिकने-सूती जैसे इस कपड़े का उपयोग सामान्य रूप से ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में होता था। किमखाब (जो रेशम, सोने और चांदी के तारों को मिलाकर सुंदर वनस्पतीय नमूने का बुना जाता है) जैसे कपड़े की बहुत मांग थी तथा मौर्यों से भी बहुत पहले से बेबीलोन

को इसका निर्यात किया जाता था।

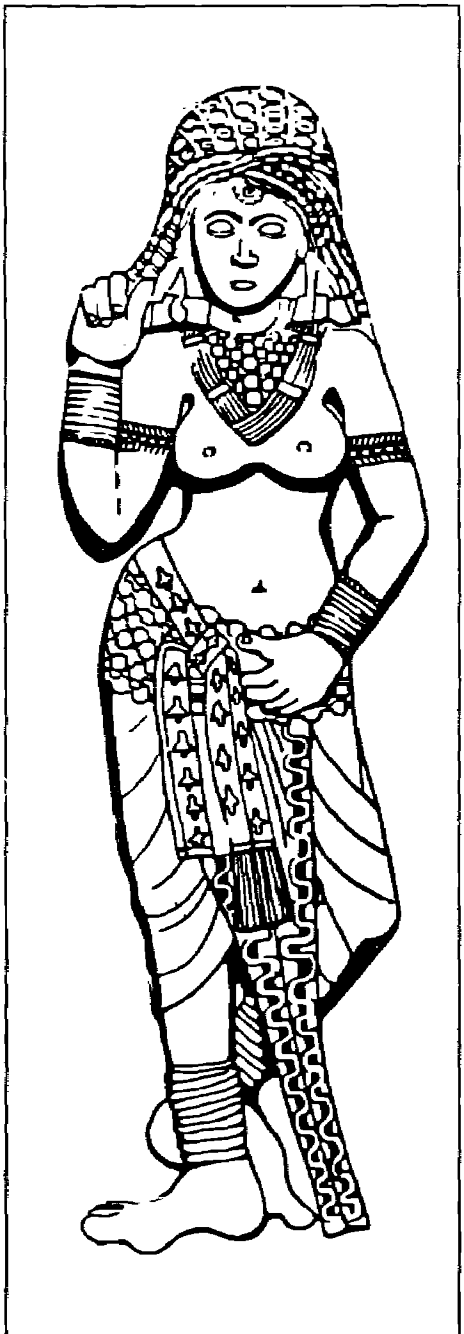
सूती, ऊनी तथा एक अन्य कपड़ा जिसे 'करपासा' कहा जाता था, उत्तर में मोटी और बारीक दोनों किस्मों में उपलब्ध था। बारीक मलमल जिस पर पीले रंग तथा सोने से कशीदाकारी की हुई होती थी तथा दिन में पहनने के लिए पारदर्शी मलमल जिसे 'शबनम' (प्रातःकाल की ओस की बूंदें) कहा जाने लगा था, भी उपलब्ध थी। आम जनता द्वारा मोटी किस्मों के वस्त्र पहने जाते थे। 'अविका' नामक ऊनी कपड़ा भेड़ की ऊन से बनाया जाता था। यह या तो एकदम श्वेत (विरंजित) अथवा शुद्ध लाल रंग में रंगा होता था। ऊनी कंबलों की किनारों पर धागे गुंथे होते थे या उन्हें एक-दूसरे के साथ गूंथ दिया जाता था। नमदा बनाने की प्रक्रिया (बुनने की बजाए रेशों को एक साथ दाबना) का भी चलन था। ऊन की हर प्रकार की किस्में उपलब्ध थीं। समाज के निर्धन वर्ग के शिरोवस्त्र, जाल तथा कंबल बनाने के लिए मोटी ऊन का प्रयोग किया जाता था। समाज के धनाढ्य वर्ग की शालें और कंबल बनाने के लिए मुलायम बारीक ऊन उपयोग में लाई जाती थी जिसकी अनेक किस्में बाजार में उपलब्ध रहती थीं।

उस समय धोबी (रजक) कपड़ों की रंगाई भी करते थे। वे वस्त्रों को धोने के बाद उन्हें सुगंधित भी कर दिया करते थे। उन दिनों वस्त्रों की रंगाई में मुख्यतया चार बुनियादी रंगों का उपयोग किया जाता था : लाल (फूलों के रंगों से बना), श्वेत (विरंजित), पीला (केसर तथा रेशे का स्वाभाविक रंग) तथा नीला (नील के पत्तों से निर्मित)। वस्त्र कई नमूनों के बुने जाते थे तथा दरी, पलंग की चादरों, कंबलों और कपड़ों के रूप में उपयोग के लिए उन पर छपाई की जाती थी।

शैली

प्रथम शती ईसा पूर्व के दौरान उत्तर में भरहुत तथा सांची में उत्कीर्ण भारी-भरकम मूर्तियों से हमें उनकी अलौकिक छटा के साथ मोटे और भारी वस्त्रों की जानकारी भी मिलती है। इनसे उस काल के भारी तहों वाले वस्त्र-विन्यास तथा सुंदर परंतु कुछ भारी आभूषण देखने को मिलते हैं। साफों की लिपटन तथा बहिर्विष्ट बालों के घुमाव से कुंडल बनाया जाता था जिसमें मजबूत कंधों के अंत में सर्पाकार बाजूबंद तथा पायल होती थी। स्त्रियों के सिर के घूंघट, वजनदार बड़े मनकों के पहनावे तथा वक्ष पर तिरछे पड़े रूमाल उस समय की इस भव्यता के परिचायक थे। गर्दन में पड़े हार और जंतर व तावीज जो वक्षस्थल तक पड़े होते थे उस समय अशुभ

शक्तियों के अहितकारी प्रभावों से बचाव की प्रवृत्ति तथा अशुभ घटित होने के भय का भाव प्रकट करते हैं। शुंग साम्राज्य के आगमन के पश्चात स्त्रियों के आभूषणों में अपेक्षाकृत परिष्कार पर अधिक बल दिखाई देता है। इन आभूषणों से सौम्य तथा शांत आकृतियों के शृंगार में चार चांद लग गए।



1. **पहनावे की रेखाकृति**
(भरहुत)

अंतरीय
बढ़िया सूती कपड़े का पिंडली तक लंबा अधोवस्त्र, खड़ी लंबी धार का सामने की ओर कच्छे के रूप में अर्थात दोनों टांगों के बीच पहना जाने वाला

उत्तरीय
छींट के कपड़े का सिर पर आड़ा-तिरछा पहने जाने वाला ऊपर का वस्त्र

कायबंध
पट्टिका शैली की कशीदाकारी की कपड़े की चौड़ी पट्टी, दोनों ओर कब्बे दार लंबे नाड़े में गांठ लगाकर पहनी जाने वाली

मेखला
स्वर्ण अथवा चांदी के मनकों की छह लड़ियों का कूल्हे का कमरदबंद

लंबनन
फुलकारा शैली में चौड़ी पट्टी पर अंतराल से जंजीरों से बना लंबा हार

कंठा
स्वर्ण अथवा चांदी के मनकों का पांच लड़ियों का छोटा हार

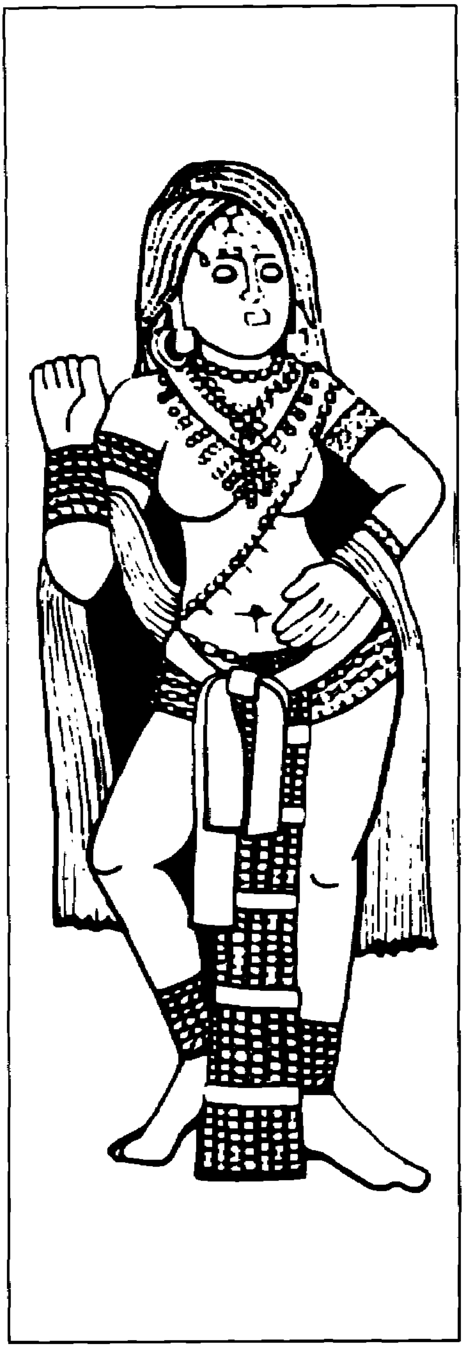
कर्णिका
तुरही की शक्ल की कान की बालियां

कंगन
दोनों हाथों में सजे दस-दस कंगन

बाजूबंद
हाथ में ऊपर बाजुओं पर पहने जाने वाले सजावटी बाजूबंद

कड़ा
पांव के दोनों टखनों पर पहने जाने वाले मुड़े हुए तार के कड़े

सितारा
मुहर जैसा स्वर्ण अथवा चांदी का पेशानी पर पहने जाने वाला सितारे की शक्ल का आभूषण



2. यक्षी
(बरनमारा)

अंतरीय
दोनों टांगों के बीच में बंधा लंगोटी शैली के कपड़े का छोटा टुकड़ा जो कमर पर नाड़े से बंधा रहता है

उत्तरीय
उत्तरीय दो प्रकार के होते हैं : एक की किनारी कशीदाकारी की होती है तथा पेशानी पर झालर के साथ सिर के ऊपर तिरछा पहना जाता है। दूसरा दोनों हाथों पर पीछे की तरफ ओढ़ा जाता है।

कायबंध
पट्टिका शैली में कपड़े की चौड़ी पट्टी जिसे छल्ले की गांठ लगाकर पहना जाता है

मेखला
मनकों की चार लड़ियों की कूल्हे की मेखला

पटका
कमर के सामने बुने हुए मनकों की टखनों तक की पट्टी

अटकन
बाएं कंधे के ऊपर आर-पार तथा सीधे बाजू के नीचे पहना जाने वाला रत्नों का हार

कंगन
कलाई पर पहने जाने वाले पांच मनकों के कंगन

बाजूबंद
बाजुओं पर पहने जाने वाले मनकों की तीन लड़ियों के बाजूबंद

कर्णिका
तुरही की शक्ल की कान की बालियां

लंबनम
मनकों का लंबा हार

कंठा
मनकों का छोटा हार

सांकल
छोटी जंजीरों से बनी पाजेब



3. कुबेर यक्ष

(भरहुत)

अंतरीय

कच्छा शैली, दोनों बराबर के सिरे सामने गांठ लगाकर टांगों के बीच से निकालकर पहने हुए। उसके बाद दोनों सिरों को तिरछा लंबी धारी में लटकाकर कमर से बांध दिया जाता है जिससे वह टांगों के बीच में जमीन तक लटका रहता है

उत्तरीय

उपवीत फैशन, वक्ष के ऊपर दाहिने कंधे पर पहना हुआ

कायबंध

मुरज शैली, छल्ले की गांठ में बंधे सिरों पर कर्णपटह घुंडियां

बाजूबंद

छेदित अलंकृत बाजूबंद

कंगन

हरेक कलाई पर अनेक कंगन

कर्णिका

तुरही की शक्ल की कान की बालियां अथवा कर्णफूल

मौली

छपे हुए कपड़े की पगड़ी, ऊपर बालों की गांठ में बंधी सिर के एक ओर सजी हुई



4. पहनावे की रेखाकृति
(भरहुत)

अंतरीय
रेखाकृति 3 में बताई गई शैली में ही पहना जाने वाला अंतरीय सिवाय इसके कि केवल एक ही लंबा सिरा पीछे लटका हुआ तथा दूसरा सिरा अंतरीय के सामने मध्य में नुकीला तह किया हुआ

उत्तरीय
वक्ष पर तह किया हुआ तथा दोनों ओर कंधों पर पीछे डाला हुआ

कायबंध
पट्टिका शैली, चौड़े कपड़े की कशीदाकारी की हुई पट्टी

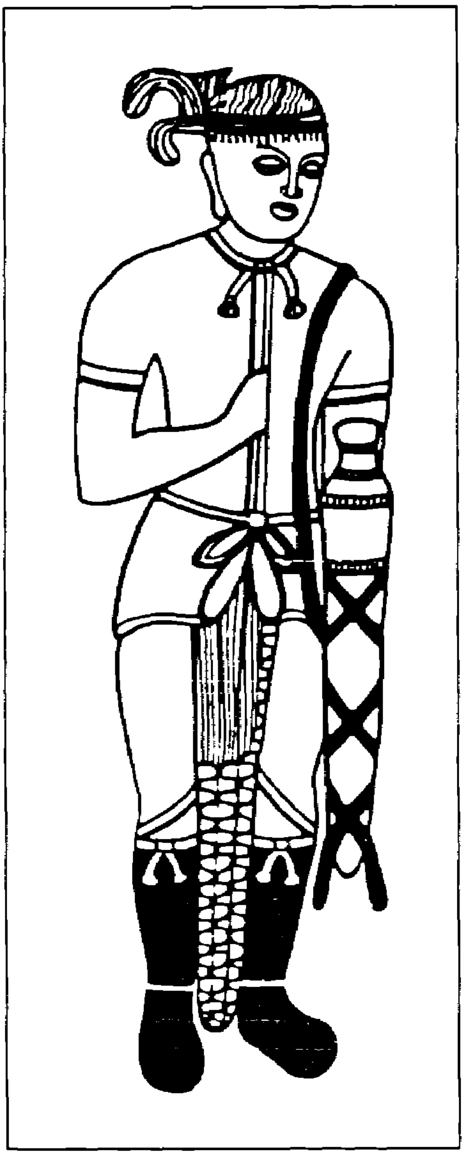
लंबनम
फुलकारा शैली का हार

बाजूबंद
पत्तेदार स्वरूप का साधारण हार

कंगन
प्रत्येक कलाई पर मनकों की तीन लड़ियों का कंगन

कर्णिका
तुरही की शक्ल की कान की बालियां, कर्णफूल

मौली
पगड़ी जिसमें सिर के लंबे बाल कपड़े के साथ गुंथे हुए तथा सिर पर चारों ओर बंधी हुई। सिर पर सामने गांठ बंधी हुई। कपड़ा सिर के चारों ओर लपेटा हुआ तथा एक अलग पट्टी से जमा हुआ



5. योद्धा
(भरहुत)

अंतरीय
टखनों तक लंबा, खड़ी लंबी धारी वाला सामने मध्य में तहाया हुआ

कुरता
वस्त्र की कटाई और सिलाई का आरंभिक उल्लेख, इसकी छोटी आस्तीन और गोल गला होता है, सामने से खुला हुआ तथा गरदन और कमर पर फीते से बंधा हुआ। कूल्हों तक लंबा

बूट
टखनों तक पहने हुए

सिरबंद
छोटे बालों पर पीछे बंधा हुआ

बाएं कंधे से लटकी हुई आड़े-तिरछे फीते मंढी म्यान में चौड़ी चपटी तलवार



6. पहनावे की रेखाकृति
(भरहुत)

उत्तरीय
किनारों के साथ टिकिया के नमूने का, छपा या बुना हुआ, यह सिर पर आड़ा-तिरछा पहना जाता है तथा पीछे कमर की ओर थैली के जैसे लटका रहता है

कंठा
गर्दन में दानेदार नमूने का छोटा हार

लंबनम
फुलकारा शैली में

केश आभूषण
बालों की बीच की मांग के अगले सिरे पर पेशानी पर लगाने वाला टीका



7. दरबारी
(भरहुत)

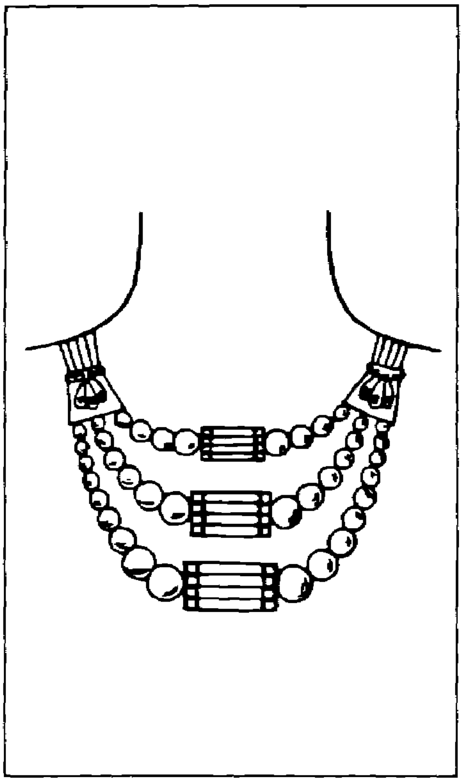
लंबे बालों को मोड़ कर दाईं ओर ऊंचा बांधा जाता है जिनके इर्द-गिर्द पगड़ी बांधी जाती है जिससे सिर के बाल पूरी तरह ढक जाते हैं। दाईं ओर हृदय के नमूने की दिखाई देती जड़ाऊ पिन लगाई जाती है जिसे पेशानी पर पगड़ी के नीचे बांधा जाता है।

←



8. दरबारी
(भरहुत)

ऊंची गांठ में गुंथे लंबे बालों के इर्द-गिर्द पगड़ी बांधी जाती है; पगड़ी को सिर पर स्थिर रखने के लिए एक सजावटी फीते का उपयोग किया जाता है; चक्र के नमूने के बड़े कर्णफूल तथा गले में दो लड़ी मनकों की माला →



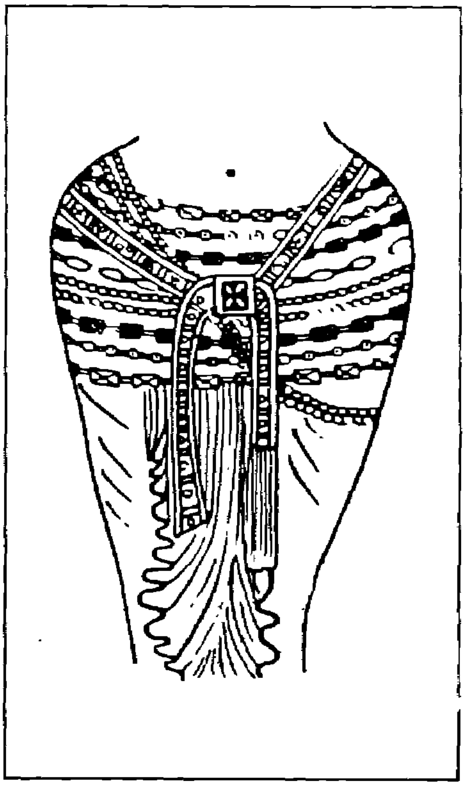
9 हार
(भरहुत)

कंठा
छोटा हार जिसे तिलड़ी कहते हैं; तीनों लड़ियों में सच्चे मोती तथा मध्य में एक मणि होती है

चार लड़ी : चोलड़ी
पंच लड़ी : पंचलड़ी
सात लड़ी : सतलड़ी

10 करधनी
(भरहुत)

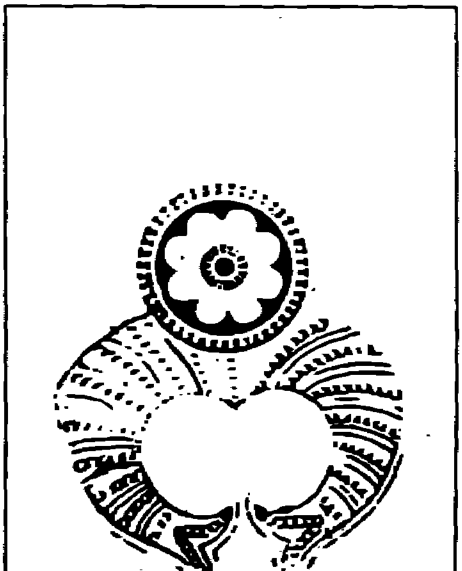
मेखला
सात लड़ों की अलंकृत सप्तकी जिसके दोनों ओर गोलाकार व अंडाकर नमूने की अंदर जुड़ी लड़ियां, इसके साथ दो कतारों में सोने अथवा कीमती पत्थर जड़ी कूल्हों पर आड़ी-तिरछी पड़ी मोतियों की मालाएं पहनी जाती थीं, जो मूलरूप से पहने जाने वाली लाल रत्ती बीजों की लड़ियों की अनुकृति होती थीं, की पट्टिका; सोने के कपड़े की कशीदाकारी की हुई पट्टी की मेखला





11 बाजूबंद
(पटना)

सर्पाकार बाजूबंद जिनसे उस काल के भारतीय आभूषणों पर ईरानी प्रभाव प्रकट होता है: लहंगा शैली में वह एक अंतरीय धारण करते हैं, एक उत्तरीय तथा अनेक लड़ा कायबंध जिसके सिरों पर गांठ लगी रहती है—कलाबुका

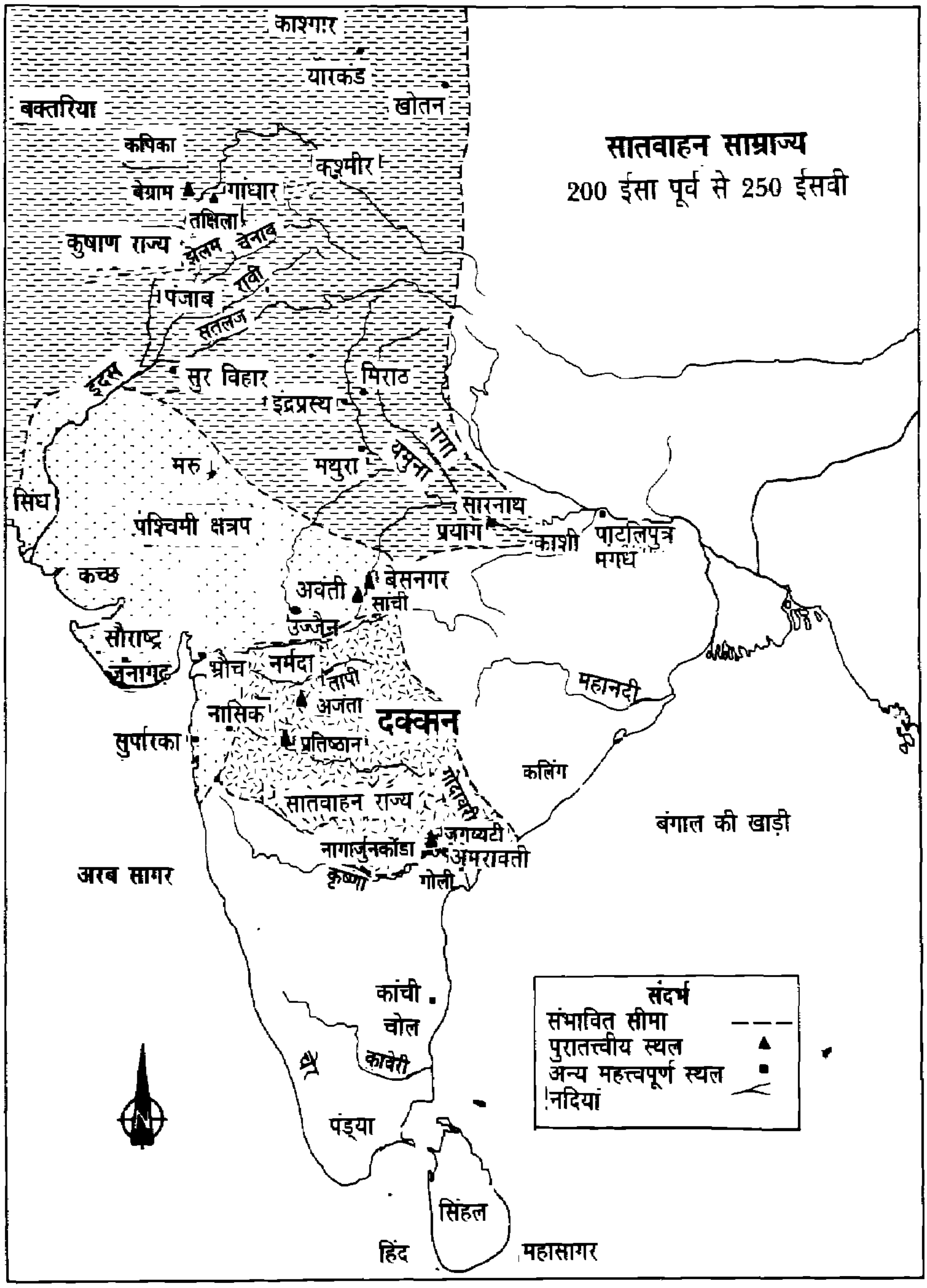


12 कर्णफूल
(भरहुत)

कर्णिका
त्रिरत्न के रूप की यह बौद्धकालिक कर्णिका बौद्धों में अधिक प्रचलित थी; यह प्रतीक हारों पर अंकित किया जाता था तथा सैनिकों, म्यान तथा ध्वज पताका पर सजावट के उपयोग में लाया जाता था।

सातवाहन
(आंध्र)
काल

(200 ईसा पूर्व से सन् 250 ईसवी)


सातवाहन साम्राज्य
200 ईसा पूर्व से 250 ईसवी
काश्गार
यारकंड
खोतन
बक्तरिया
कपिका
कश्मीर
बेग्राम
गांधार
तक्षिला
कुषाण राज्य
झेलम
चेनाब
रावी
पंजाब
सतलज
इंदस
सुर विहार
मिराठ
इंद्रप्रस्थ
गंगा
यमुना
मरु
मथुरा
सिंध
पश्चिमी क्षत्रप
सारनाथ
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
मगध
कच्छ
अवंती
बेसनगर
सांची
उज्जैन
सौराष्ट्र
जूनागढ़
भ्रौच
नर्मदा
ताप्ती
महानदी
नासिक
अजंता
दक्कन
सुर्पारका
प्रतिष्ठान
कलिंग
गोदावरी
सातवाहन राज्य
बंगाल की खाड़ी
जगय्यपेटी
नागार्जुनकोंडा
अमरावती
अरब सागर
कृष्णा
गोली
कांची
चोल
कावेरी
पंड्या
सिंहल
हिंद
महासागर
संदर्भ
संभावित सीमा
पुरातत्त्वीय स्थल
अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल
नदियां

सातवाहन (आंध्र) काल

(200 ईसा पूर्व से सन् 250 ईसवी)

वेशभूषाओं के महत्व के मुख्य पुरातत्वीय स्थल

- सांची के द्वार
- अजंता की गुफाएं IX, X
- अमरावती प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ काल
- गोली
- नागार्जुनकुंड

इतिहास और सामाजिक जीवन

मौर्य साम्राज्य के पश्चात सातवाहन या आंध्र साम्राज्य सबसे महान साम्राज्य था। इसकी स्थापना तब हुई थी जब दकन में मौर्य साम्राज्य का अवसान हो रहा था। यह साम्राज्य बिना किसी व्यवधान के 460 वर्ष तक अनवरत चला तथा कुछ समय तक कुषाण साम्राज्य के समानांतर रहा जिससे लगभग एक शताब्दी तक इसका संघर्ष रहा। कुल मिलाकर यह समय शांत तथा आर्थिक रूप से संपन्न काल था। इस काल में व्यापार और उद्योग का, विशेष रूप से रोम के साथ, अच्छा विकास हुआ। रोमवासी अपने साथ निरंतर रोमन सोना भारत में लाए जिसने नगरीय जीवन के स्वरूप को काफी हद तक परिवर्तित कर दिया।

प्रजातीयता के आधार पर दकन के पूर्व के रहने वाले एक मिली-जुली संकर नस्ल की प्रजाति थे, जो आदिम द्रविड़ (अथवा पूर्व द्रविड़) साका, पहलवास तथा यूनानियों (यवनों) का मिला-जुला रूप थे। सातवाहनों द्वारा स्थापित साम्राज्य के पूर्व ही बौद्ध और मौर्य संस्कृतियों ने एक सभ्य संरचना का निर्माण कर दिया था। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में इशवाकुओं ने सातवाहनों को बेदखल कर दिया था, जो स्वयं भी दकन के थे।

राजसी वैभव का जीवन

मौर्य और शुंग काल से ही राजसी व्यक्तित्व के छह मुख्य प्रतीक थे। ये थे; पगड़ी चंवरों की जोड़ी, छतरी, खड्ग, चप्पल तथा राजसी ठाट-बाट से रहना। इनमें से दो प्रतीक, छतरी और चंवर, ऐसे मुख्य प्रतीक थे जिनका उपयोग प्रायः हमेशा ही औपचारिक अवसरों पर किया जाता था। सम्राट और भद्रजन की छतरी सफेद तथा सोने की होती थी। छतरी को छाताबरदार या छत्रधारी लेकर चलते थे। चंवर याक जानवर की दुम से निर्मित होते थे और इनका हत्था सोने का होता था। ये हत्थे दो होते थे और इन्हें बारी-बारी से चंवरबरदारों द्वारा हिलाया जाता था। इसके साथ ही ताड़ के रंगबिरंगे पत्तों का एक पंखा होता था, जो छाल, सिर घास अथवा मयूर पंख से बनाया जाता था और जिसे एक अन्य सहायक द्वारा झला जाता था।

शक्ति की प्रतीक खड्ग को महिला परिचारिकाएं 'खड्गवाहिनी' अपने कंधों पर लेकर चलती थीं। वे सामान्यतया सम्राट अथवा राजकुमार के पीछे उनके निकट ही खड़ी रहती थीं। मूलतया शूकर-चर्म से निर्मित तसमों वाली चप्पलों को पहनने का विशेषाधिकार केवल सम्राटों का था। ऐसा कहा जाता था कि सम्राटों की अनुपस्थिति में खड्ग और चप्पलें ही राज किया करती थीं।

पूर्व सातवाहन काल
(200-100 ईसा पूर्व)

वेशभूषा

दकनवासी संकरित प्रजाति के थे, जो आदिम द्राविड़ों तथा विदेशी आक्रमणकारियों का मिला-जिला रूप थे। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में उनके वस्त्र भी विदेशी तथा देशी वस्त्रों का दिलचस्प मिश्रण थे। ये सभी वस्त्र अजंता की गुफा IX और X में चित्रित हैं।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हमें धारीदार अथवा मधुमक्खियों के छत्ते जैसे नमूने का कुरता कंचुक मिलता है जिसे परिचारक अथवा शिकारी पहना करते थे। कंचुक जांघों के मध्य जितनी लंबाई का होता था। इसकी आस्तीनें छोटी या बड़ी होती थीं। ये बाईं ओर से खुलते थे परंतु कुछ-एक को सामने से भी खोला जाता था। सम्राट द्वारा पहने जाने वाली शिकारी पोशाक के कुरते का गला खुला हुआ दिखाई नहीं देता था तथा पीछे की ओर से भी संभवतया ऐसा ही होता था। गले भी भिन्न-भिन्न

नमूनों के होते थे। कुछ गले V की शक्ल के होते थे तथा अन्य गोल होते थे। कुरते के साथ दो या तीन गोल तहों का एक मोटा कायबंध कमर के चारों ओर बांधा जाता था। आदिवासी प्रजातियों द्वारा एक सजावटी पगड़ी 'उष्णीश' भी पहनी जाती थी जिसे काले केशों के चारों ओर बालों के साथ गूंथा जाता था। इसके अतिरिक्त शिकारी लोग दो लंबी पट्टियों की चप्पलें पहनते थे जिनमें बकसुओं से बंद करने के लिए एक तसमा होता था जैसाकि आज भी दकन में देखा जा सकता है। जैसे-जैसे उत्तर का तथा विदेशी आक्रमणकारियों का प्रभाव दकन में फैला, ग्रामीण महिलाओं ने भी अपनी वेशभूषा बदल ली। वे छोटे अंतरीय और बड़े उत्तरीय पहनने लगीं जिनकी बड़ी किनारी होती थी जिससे उनके सिर व शरीर का पीछे का भाग ढक जाता था। उनके माथे पर टीका तथा बांहों में शंख अथवा हाथी दांत की बनी कई चूड़ियां होती थीं। लहंगे के अलावा वे लगभग लंबाड़ियों की जैसे दिखाई देती थीं जो आज भी दकन की एक कंजर जनजाति है।

मौर्य-शुंग काल के लोगों के राजकीय न्यायालयों में महिला परिचारिकाएं पारदर्शी लंबे अंतरीय पहनती थीं जिनके ढीले कायबंध मध्य में एक नोकदार सजावटी गांठ से बंधे होते थे। उनके कई फीतों से बने कमरबंद अथवा 'मेखला' मनकों से बनी होती थी। उनके कंधों तक लंबे केश मध्य में चुटीले या ऊंची चोटी से गुंथे होते थे जिससे उन परिचारिकाओं के विदेशी होने का आभास होता था यद्यपि उनके द्वारा पहनी जाने वाली वेशभूषा में कुछ भी ऐसा नहीं होता था जिससे वे विदेशी दिखाई दें। सम्राट तथा उनके अधिकांश दरबारी देशी अंतरीय पहनते थे। अपने घरों पर वे अनौपचारिक लघु वस्त्र पहनते थे। लंबे पूरे वस्त्र वे समारोहों के अवसर पर पहना करते थे। इन वस्त्रों के साथ सजावटी 'कायबंध' विभिन्न शैलियों में बांधा जाता था तथा उसमें गांठ लगाई जाती थी। कायबंध एक मोटी रस्सी के जैसे भी बांधा जा सकता था अथवा उसे अर्द्ध-वृत्त में सामने फंदा लगाकर भी पहना जाता था तथा उसके दोनों सिरों के फुंदने दिखाई देते थे। ये मोटे रेशम से बंधे हुए भी होते थे। 'उष्णीश' (पगड़ी) हमेशा पहनी जाती थी तथा आवश्यकता होने पर एक मुकुट अथवा त्रिमुकुट भी पहना जाता था।

शिरोभूषण और केश-विन्यास

जंगल की आदिम महिलाएं ओढ़नी और सिरबंद पहनती थीं जिसमें मयूर पंख लगे होते थे। ग्राम्य तथा सामान्य महिलाएं अपने केशों में गुद्दी पर एक साधारण गांठ बांधती थीं जो लंबे उत्तरीय से ढकी रहती थी जिसकी चौड़ी किनारियां कभी-कभी

सजी हुई होती थीं। दरबारी परिचारिकाएं तथा धनाढ्य वर्ग की महिलाएं अपने केशों को शृंगारिक रूप से संवारती थीं जिनकी चुटिया पर सीधी ओर फूल लगे अथवा गुंथे हुए होते थे। अपने केशों को यथास्थान सजाए रखने के लिए महिलाएं एक साधारण अथवा सोने की कशीदाकारी का चुटीला भी पहनती थीं।

प्रायः पुरुषों के केश एक लंबे कपड़े के साथ गुंथे हुए होते थे, जो विभिन्न ढंग से उष्णीश (पगड़ी) का रूप ले लेते थे। बहुधा इसमें एक गांठ होती थी, जैसी आदिम प्रजातियों के केशों के ऊपर की गांठ होती थी, जो पगड़ी के कपड़े से ढकी रहती थी। यह गांठ सामने मध्य में हो सकती थी अथवा शंख-कवच की शक्ल में पेशानी के बाहर तक निकली रहती थी या केशों का गुच्छा पगड़ी के ऊपर दिखाई देता था।

आभूषण

इस काल के आभूषण उत्तर सातवाहन काल में पहने जाने वाले आभूषणों के ठीक विपरीत भारी पुरातन स्वरूप के होते थे। सभी पुरुष दरबारी अथवा ग्रामीण देशज वेशभूषा के साथ किसी न किसी प्रकार का आभूषण पहने दिखाई देते थे। परंतु शिकारी, परिचारक और सैनिकों द्वारा कंचुक अथवा कुरता जैसे विदेशी वस्त्र पहने जाने की दशा में बहुत थोड़े आभूषण पहने जाते थे अथवा आभूषण बिलकुल नहीं पहने जाते थे। उनके द्वारा जो भी आभूषण प्रायः पहने जाते थे उनमें चक्र के रूप के केवल कर्णफूल थे।

तथापि, देशज आभूषणों में लंबनम, कर्णफूल और पुरुषों के लिए कंगन की जोड़ी तथा बाजूबंद होते थे। स्त्रियां बाजूबंद नहीं पहनती थीं। उनके स्थान पर वे सीपी और हाथी-दांत की बनी अनेक चूड़ियां, चक्र के प्रकार के कर्णफूल, लंबनम तथा पेशानी पर टीका पहनती थीं।

सैन्य वेशभूषा

सैनिक आधी आस्तीन के कुरते अथवा जाकेट पर सजावटी शिरोवस्त्र पहनते थे, जिसकी पगड़ी की चांद पर गांठ लगी होती थी, और ठोड़ी के नीचे बंद तथा कानों के झब्बे होते थे, अथवा पगड़ी में सिर की चांद पर दो गांठें लगी होती थीं। सैनिक कुल्हाड़ियों और धनुष तथा बाणों से लैस होते थे, अथवा हंसिए साथ लेकर चलते थे। तथापि प्रासाद के रक्षक अंतरीय पहनते थे जो एक भारी लबादा होता था जो

उनके बाएं कंधे पर लिपटा रहता था।

उत्तर सातवाहन काल
(100 ईसा पूर्व से 250 ईसवी)

वेशभूषा

पहनावा विरल तथा सामान्य रूप से बारीक सूती कपड़े का होता था। पहनावे की तीन वस्तुएं अंतरीय, उत्तरीय तथा कायबंध का विस्तृत उपयोग होता था। परंतु आमतौर पर विदेशी और देशी वेशभूषा का दिलचस्प मिश्रण दिखाई देता था।

पुरुषों तथा स्त्रियों का उत्तरीय सूती अथवा रेशम का होता था तथा सामान्यतया सफेद रंग का होता था। कभी-कभी उत्तरीय सुंदर रंगों की कशीदाकारी का होता था। पुरुष इसे अपनी पीठ पर तिरछा डालते थे तथा यह दोनों कंधों पर पड़ा रहता था या वे उसे अपने वक्ष पर डाल लेते थे। यदा-कदा वे उससे अपना सिर ढकने का काम भी लिया करते थे। उस समय तक उत्तरीय स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा कच्छे के ढंग से पहना जाता था जिसका तात्पर्य यह है कि उसका एक सिरा टांगों के बीच से बाहर निकाल कर पीछे बांधा जाता था। परंतु यह तरीका मनमौजी फैशन के अनुसार था। पुरुष इसे अपने घुटनों तक लंबा अथवा उससे भी कम लंबा रखते थे। सामान्यतया अंतरीय लगभग पारदर्शी कपड़े का बना होता था तथा स्त्रियां इसे कसा हुआ अपने शरीर से चिपका हुआ पहनती थीं। आंध्र की पूर्व की मूर्तिकला में यह लगभग दिखाई नहीं देता तथा केवल दो-दोहरी लकीरों से वस्त्र आच्छादन दिखाई देता है। नीवी-बंध अथवा अंतरीय को कमर पर बांधने में लगाई जाने वाली प्रारंभिक गांठ का संकेत प्रायः प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलता है।

धनुष की शक्ल की गांठ से बंधा हुआ कायबंध स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा पहना जाता था। उससे कमर पर अंतरीय को संभालने में सहारा मिलता था। कायबंध विभिन्न प्रकार से पहना जाता था। साधारण कमरबंद के रूप में पहना जाने वाला कायबंध 'वीथिका' कहलाता था। महिलाएं पट्टिका भी पहनती थीं जो कपड़ों के टुकड़ों से बनी चौड़ी रिबन की शक्ल की होती थी। यह अधिकतर रेशम की होती थी।

एक गोलाकार रत्नजटित भारी वस्त्र 'कक्षबंध' जो दिखाई देता था तथा जिसमें फुंदने लगे हुए होते थे, पुरुषों द्वारा पहना जाता था। एक साथ गुंथी हुई कई पट्टियों के कमरबंद को 'कलाबुक' कहते थे, जिसमें 'मुरज' में फुंदने के स्थान पर ढोल के चमड़े जैसी गांठें होती थीं।

अंतरीय, उत्तरीय तथा कायबंध जैसी साधारण वेशभूषा के पहनने के विभिन्न तरीकों और शिरोवस्त्र व आभूषणों से ही हम भारत में किसी काल विशेष में पहनी जाने वाली वेशभूषा तथा उस काल के फैशन के क्रमिक विकास का पता लगा सकते हैं। इस काल की मूर्तिकला में सच्चा यज्ञोपवीत अथवा पवित्र धागा मिलता है। इससे पहले यह उत्तरीय के रूप में होता था जिसे बाएं कंधे के ऊपर तथा दाएं हाथ के नीचे 'उपविता' के फैशन के जैसे लपेटा जाता था। इसी से 'यज्ञोपवीत' शब्द की उत्पत्ति हुई। 'यज्ञोपवीत' में तीन सूती धागे होते हैं जिनमें प्रत्येक में परस्पर गुंथी हुई नौ लड़ियां होती हैं। परंतु क्षत्रियों के लिए ये धागे सन के बटे होते हैं तथा वैश्यों के लिए ऊन के होते हैं। तत्पश्चात यह पवित्र धागा सीमित रूप में अन्य जातियों द्वारा भी धारण किया जाने लगा परंतु ब्राह्मण समुदाय ने इसे दृढ़ता से संजोए रखा।

राजदरबारों में परिचारकों, सईसों, रक्षकों आदि द्वारा कुरता जैसी विदेशी वेशभूषा जिसे कंचुक कहते थे प्रायः उपयोग में लाई जाती थी। प्रासादों के महिला-कक्षों में हिजड़ों तथा अन्य परिचारिकाओं द्वारा एक देशज लंबा कुरता पहना जाता था। स्त्रियां भी देशी अंतरीय के साथ छोटा 'कंसुका' पहनती थीं तथा 'कंचुक' के पिंडली तक लंबा होने की दशा में इसे कायबंध और उत्तरीय के साथ कई प्रकार से पहना जाता था।

शिरोभूषण और केश-विन्यास

पुरुषों की 'उष्णीश' (पगड़ी) को सामान्य रूप से केशों की चोटी को 'उष्णीश' के कपड़े के एक सिरे से ढकते हुए सिर पर तीन या चार बार गोलाकार लपेटा जाता था। यह पगड़ी आमतौर पर सफेद रंग की होती थी यद्यपि यह अन्य रंगों के कपड़े की भी होती थी। साधारण पगड़ियां सोने की अलंकृत पट्टी अथवा 'पट्टाबंध' के सहारे यथास्थान धारण की जाती थीं। विशेष अवसरों पर सोने की पगड़ियां बांधी जाती थीं। 'किरीट' अथवा मुकुटों का उपयोग भी किया जाता था। इनकी एक किस्म बेलनाकार छोटी टोपी होती थी जो रत्नजटित मणकों तथा भांति-भांति के आभूषणों से लैस होती थी। 'मौलीबंध' एक सजी हुई पगड़ी होती थी जो केशों के साथ बांधी जाती थी, तथा ये मोतियों की लड़ियों और फूलों की मालाओं से सजी हुई होती थी। सामान्यतया यह पगड़ी मध्य में सामने केशों की चोटी की गांठ को ढक लेती थी तथा पगड़ी को यथास्थान पहने हुए रखने के लिए इसमें मध्य में रत्नजटित बकलस अथवा 'मौलीमणि' होती थी। वैविध्य की दृष्टि से केशों

की चोटी की गांठ नाशपाती अथवा अंडाकार शक्ल की होती थी। जब पगड़ी नहीं पहनी जाती थी तो केशों में एक या दो चोटियां होती थीं अथवा ऐसा भी होता था कि एक चोटी गुंथी हुई होती थी और दूसरी चोटी में चुटीला होता था। बीच में मांग निकाले गए छोटे केश जो गर्दन तक लंबे होते थे, जनसाधारण के बीच अधिक लोकप्रिय थे।

स्त्रियां अपना केश-विन्यास विभिन्न तरीकों से करती थीं। केश संवारने का एक ढंग गुंथी हुई चोटी 'प्रवेणी' के रूप में था, जो पीछे पड़ी हुई होती थी तथा यह वेणी आभूषणजटित और फुंदने लगी होती थी, ठीक वैसी ही जैसी कि आजकल भरतनाट्यम की नृत्यांगनाएं चोटियां रखती हैं। केशों की चोटियां बांधने की अन्य सामान्य विधि पांच पतली लटकी हुई चोटियों का जूड़ा बांधना था जो सभी वर्गों की स्त्रियों में लोकप्रिय था। 'केशपाश' शैली में केशों को फंदे जैसा लपेटकर सिर के निकट पीछे लंबी गांठ में बांधा जाता था जो गुद्दी के नीचे तक जाती थी। इस वेणी में फूलों का चुटीला होता था अथवा वेणी से लटकी फूलों की छोटी माला होती थी। यदि केशों की चोटी में साधारण गांठ लगाई जाती थी, तो उसे 'कबीरबंध' कहते थे। केशों की फूलों, मोतियों तथा आभूषणों से सजावट को 'धामित्या' कहते थे। इससे केश एक छोटी टोपी अथवा पगड़ी के जैसे ढक जाते थे। सातवाहन साम्राज्य में इस शैली को अत्यधिक पसंद किया जाता था।

पूर्व काल की पगड़ियां स्त्रियां अब नहीं पहनती थीं। केशों में लगाने के लिए विशेष प्रकार के आभूषण गढ़े जाने लगे थे। 'चूड़ामणि' कमल की शक्ल की होती थी। इसकी पंखुरियां मोतियों तथा बेशकीमती पत्थरों की होती थीं। यह सामान्यतया केशों की गांठ में मध्य में पहनी जाती थी। 'मकरिका' मीन-मकर के रूप की होती थी तथा यह केशों की सामने की मांग के आरंभ में पहनी जाती थी जिस प्रकार उत्तरी क्षेत्र में उड़िया स्त्रियां सोने के आभूषण पहनती हैं। छोटे मुकुटों की तरह के चुटीले भी होते थे जिनसे केशों को खींचकर बांधा अथवा खुला छोड़ा जाता था।

आभूषण

सातवाहन साम्राज्य में हर प्रकार के आभूषणों में विशेष रूप से मोतियों की लड़ियों पर अधिक बल था। गत काल की भांति इस काल में भी स्त्री-पुरुष दोनों ही कर्णफूल, कंगन, बाजूबंद तथा हार पहनते थे, विशेष रूप से आदिवासी लोगों में इसका अधिक प्रचलन था। कर्णफूल का सामान्य रूप कुंडली के रूप का कुंडल

था जो साधारण अथवा सजावटी होता था। ताड़ के पत्ते 'तालपत्र' के छोटे डंठल को मोड़कर कान की लौ में प्रविष्ट किया जाता था। इसी रूप में बाद में इसे हाथीदांत या सोने का बनाया जाने लगा जिसमें माणक लगे होते थे। माणिकों से जड़ा संपूर्ण खिले कमल के फूल जैसा 'कनक-कमल' दक्षिण भारत में आज भी लोकप्रिय है। कुछ पीढ़ियों पहले 'कर्णिका' अथवा 'झुमकी' का भी चलन था। ये फुंदनों के जैसे ऊपर से नीचे की ओर लगी कमल के बीज की फली की शक्ल जैसी होती थी। नेकलिस अथवा 'हार' मोतियों की लड़ियों के होते थे, जो कभी-कभी मात्र एक लड़ी के भी होते थे जिन्हें 'एकावली' कहा जाता था। रत्नों तथा सोने के मणकों के हार को 'यष्टि' कहा जाता था। इसमें बीच का माणक प्रायः अन्य माणकों से बड़ा होता था। इस प्रकार के अनेक हार एक साथ पहने जा सकते थे। इन हारों में कभी-कभी तीन या चार माणिक थोड़े-थोड़े फासले पर लगाए जाते थे जिन्हें 'फलक' कहते थे। यह हार की अनेक लड़ियों को एक साथ रखता था तथा इसे 'फलकहार' कहते थे।

एक साधारण सुगंधित सूती धागे के हार का प्रयोग भी होता था तथा शिशुओं को बुरी नजर से बचाने के लिए उनके गले में चीते के नाखूनों का हार पहनाया जाता था। मोतियों से बना 'यज्ञोपवीत' अथवा पवित्र धागा भी पहना जाता था जिसे 'मुक्तायज्ञोपवीत' कहते थे। हार का छोटा रूप 'कंठा' भी पहना जाता रहा था जो प्रायः स्वर्णजटित माणिक व पन्नों का होता था। सोने के सिक्कों का हार 'निश्क' भी पहना जाता था जो रेशम की डोरी अथवा सोने के तार से बुनी हुई डोरी का होता था तथा जो लगभग महाराष्ट्र के आधुनिक 'पुतल्य' तथा तमिलनाडु के 'मलय' के रूप का होता था। कभी-कभी सोने के सिक्कों के स्थान पर आम की शक्ल से मिलते सोने के टुकड़ों या स्वर्णजटित रत्नों का उपयोग किया जाता था जो दक्षिण भारत के 'मंगलमय' के जैसा होता था। पुरुष एवं स्त्री ठोस सोने के सेट का कंगन 'वाल्य' पहनते थे जिसमें कीमती पत्थर जड़े होते थे। अधिक उत्कृष्ट किस्म की मीनाकारी के सोने के तार से बने बटी हुई रस्सी की शक्ल के हार सामान्य रूप से स्त्रियां ही पहना करती थीं। स्त्रियां हाथीदांत तथा गैंडे के सींग से बनी चूड़ियां भी पहनती थीं। 'फलकहार' के जैसे हार के प्रकार के कंगनों में रत्नजटित पट्टी होती थी जिसे 'फलकवालय' कहा जाता था।

स्त्री-पुरुष दोनों के ही कंगन अथवा 'केयूर' चुस्त होते थे। इनमें नक्काशी की हुई होती थी या ये रत्नजटित अथवा सर्पाकार होते थे। इनकी नोक सीधी होती थी अथवा इनके कोण ऊंची कोर के होते थे। अनेक लड़ियों की रत्नजटित 'मेखला' केवल स्त्रियों द्वारा ही पहनी जाती थी। टनटनाती 'कांसी' की घंटियों

से लेकर जड़ाऊ जंजीर अथवा मोतियों, मणकों व कीमती पत्थरों की 'रसना' शैली की लड़ियां तक अनेक प्रकार की होती थीं। उक्त कमरबंद अत्यंत आकर्षक होते थे तथा ये अधोवस्त्र अथवा अंतरीय को संभाले रखते थे। जैसा कि पूर्व अध्याय में वर्णित है, पुरुषों के कपड़ों के कमरबंद अथवा 'कायबंध' भी इसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होते थे।

केवल स्त्रियों द्वारा पहनी जाने वाली पाजेब आश्चर्यजनक विविधता लिए हुए होती थी। मंजीरे खोखले और हल्के होते थे। ये इतने ढीले होते थे कि अकसर टखनों से टकराते थे। चलते समय, पाजेब के पोले घुंघरू, जिनमें अंदर रत्न होते थे, बजते थे। ऐसी पाजेबें आज भी मारवाड़ में पहनी जाती हैं। 'नूपुर' सादा होते थे, जबकि 'किंकिणी' में छोटी खुली घंटियां होती थीं। भारी दिखने वाले नूपुरों 'तुलाकोटि' के दोनों सिरे जहां मिलते हैं, वह स्थान चौड़ा होता था। यही रूप आज तक आंध्र में पहना जाता है। पति की अनुपस्थिति में पत्नी पांव में बजने वाली पाजेब नहीं पहनती थी। अंगुली की अंगूठी 'अंगुलिका' सातवाहन काल की मूर्तियों पर दिखाई देती है। परंतु ऐसा 150 ई. के बाद की मूर्तियों पर ही है।

'हेमावैकक्ष' एक ऐसा आभूषण है, जो कुषाण काल में स्त्रियों द्वारा प्रायः पहना जाता था। यह फूलों की दो मालाओं अथवा मोतियों का होता था तथा वक्ष पर आड़ा-तिरछा पड़ा रहता था।

सैन्य वेशभूषा

आंध्र के सैनिक एक अंतरीय पहनते थे, जिसे मार्च करते समय सुविधा के लिए उसकी गोट की किनारी से उठाकर कमर से बांध लिया जाता था। इसी शैली का प्रयोग आज भी तमिलनाडु में किया जाता है। एक कपड़े का टुकड़ा अथवा 'कायबंध' सहारे के लिए कमर से कसकर बांधा जाता था तथा कभी-कभी सुरक्षा की दृष्टि से इसे वक्ष पर तिरछा बांध लिया जाता था। परवर्ती समय में इसका विकास 'चन्नवीर' के रूप में हुआ जो कार्य में पूर्व बेबीलोन तथा एसिरियन तलवार के पट्टे के समान था जो धातु के बकल के साथ मध्य में वक्ष पर तिरछा पड़ा रहता था। इसके अतिरिक्त इस काल के सैनिक कार्मिक विभिन्न अवसरों पर कर्णफूल तथा साधारण आभूषण पहनते थे।

आंध्र के कुछ एक नरेशों द्वारा विदेशी साका सैनिकों को राजकीय अंगरक्षकों के रूप में नियोजित किया जाता था। वे झालरदार आस्तीनों का भारी कुरता पहनते थे, जो घुटनों अथवा जांघों के मध्य तक लंबा होता था। इसके साथ ये

सैनिक एक प्रकार के चूड़ीदार अथवा झालरदार पायजामे पहनते थे, तथा उनके कंटोपों में कर्णपल्लू लगे होते थे। ये कमर पर एक चौड़ी पेटी बांधते थे। कभी-कभी पगड़ी के साथ बाएं कंधे पर भारी चादर के साथ दुलाई का कुरता पहना जाता था—यह विदेशी और देशी वेशभूषा का दिलचस्प मिश्रण था। सैनिकों के लिए जूते पहनना आवश्यक नहीं था तथा जूते देशी सैन्य-दलों की बजाए विदेशी सैन्य-दल ही पहना करते थे।

एक प्रशिक्षित लड़ाकू का साज-सामान मुख्यतया उसकी तलवार, ढाल, धनुष, फरसा तथा भाला होते थे; कभी-कभी मुद्गर, गदा तथा नेजे का उपयोग भी किया जाता था। तलवारें सीधी अथवा घुमावदार होती थीं तथा उनके एक ओर अथवा दोनों ओर तेज धार होती थी। तलवारों की लंबाई तीस इंच होती थी तथा उनकी कारीगरी सुंदर होती थी। जो व्यक्ति अधिकार में होते थे उनकी तलवारों के हत्थे हाथीदांत अथवा सींग के बने हुए होते थे तथा उनकी मूठ कीमती धातुओं की रत्नजटित होती थी। सामान्य सैनिक की तलवार साधारण होती थी तथा उसके हत्थे बांस अथवा लकड़ी के होते थे। इन तलवारों को बढ़िया छपे चमड़े की म्यान 'कोष' में डालकर सामान्यतया कमर के बाईं ओर बांधा जाता था। छोटी तथा अधिक आलंकारिक तलवारों या कटारों को सोने की जंजीर से बांधा जाता था।

ढालें शक्ल में मुख्य रूप में आयताकार होती थीं व शुद्ध रूप से क्रियात्मक होती थीं तथा इनकी लंबाई शरीर की सुरक्षा के लिए पर्याप्त होती थी। गदा छोटी हो या बड़ी, वजन में काफी भारी होती थीं तथा उनका उपयोग शत्रु पर भारी वार करने के लिए किया जाता था। लकड़ी अथवा सींग का बना हुआ धनुष लाल रंग से रंगा हुआ होता था तथा उसकी गेली सजी हुई होती थी। बांस के बने हुए धनुष अधिक लोकप्रिय होते थे। धनुष की प्रत्यंचा तांत अथवा सन की बनाई जाती थी। तीरों के मुख लोहे, हड्डी व लकड़ी के बनाए जाते थे, तथा उन्हें पशुओं की अथवा अन्य शक्लों में ढाला जाता था तथा इनमें तांत के साथ परों के बाण लगे होते थे। कभी-कभी तीरों की नोक को विष में भी डुबाया जाता था।

धार्मिक व्यक्ति

उस समय में बौद्ध भिक्षु पर्याप्त शक्तिशाली स्थिति में आ गए थे, तथा निर्धन रहने की अपनी शपथ त्याग कर चुके थे। उनके कपड़े चिंदियों के सदृश्य होते थे परंतु वे एक जैसे रंग के बढ़िया किस्म के कपड़ों के टुकड़ों के होते थे, तथा

संतुलित चौखानों में व्यवस्थित ढंग से परस्पर जुड़े होते थे। जैसा कि जातकों में उल्लिखित है, ये वस्त्र संभवतया इन बौद्ध भिक्षुओं को धनाढ्य दान-दाताओं द्वारा भेंट में दिए जाते थे।

हिंदू तपस्वियों का छाल की पट्टियों की वेशभूषा 'वलकल' पहनना जारी था जिसके साथ वे अपने बाएं कंधे पर 'अजिनयज्ञोपवीत' कही जाने वाली शैली में मृग की खाल डाले रखते थे। उनके केश भारी गांठ में बंधे होते थे, जिसे 'जटा-भार' कहा जाता था, तथा कभी-कभी उनके केश छोटी चोटियों में गुंथे होते थे। पुजारी ब्राह्मण होते थे, जो सफेद वस्त्र धारण करते थे परंतु समारोहों के अवसर पर पदासीन होने की दशा में एक लाल रंग की पगड़ी पहन लेते थे।

जैन मुनि तथा साध्वी आज भी वही अपनी श्वेत चादर पहनते हैं जो उन दिनों पहना करते थे तथा कट्टर रूढ़िवादिता के कारण उनकी आस्था एवं रीति-रिवाजों में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

वस्त्र उद्योग और रंगाई-छपाई

मौर्य काल तथा उसके भी पूर्व से वस्त्र उद्योग का उत्पादन भारत में फल-फूल रहा था, तथा इसकी विविधता के संदर्भ ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में निरंतर मिलते हैं। मोटे तथा बारीक कपड़ों की अनेक किस्मों की बहुत मांग थी। धनाढ्य वर्ग की कपड़ों की अलमारी में मुख्य रूप से रेशम से बने वस्त्र होते थे। बुनकर और सभी प्रकार के श्रमिक सन से बना एक सस्ता कपड़ा पहनते थे। सातवाहनों द्वारा शासित भारत के भू-भाग में गर्म मौसम के कारण ऊन का अधिक प्रचलन नहीं था परंतु सर्दी के मौसम में चादर अथवा कंबल के रूप में ऊन का उपयोग किया जाता था।

वैदिक काल से ही नीला, पीला, किरमिजी, मेजेंटा, काला तथा हल्दिया रंग की विभिन्न प्रकार की रंग-सामग्री उपलब्ध थी। चूंकि धोबी भी रंगरेज हुआ करते थे, वे इन रंगों से भली-भांति परिचित होते थे, तथा रंगाई की प्रक्रिया की जानकारी अपनी उत्तरवर्ती पीढ़ियों को दे दिया करते थे। सातवाहनों का पर्याप्त व्यापार जिन देशों से होता था यथा चीन, ईरान और रोम, उन देशों द्वारा प्रयुक्त रंगाई-छपाई के विविध ज्ञात रंगों तथा सामग्री का प्रयोग उन्होंने अपने यहां के वस्त्र उद्योग में अवश्य समाविष्ट किया होगा।

शैली

उत्तर सातवाहन शैली द्राविड़ और आंध्र लोकाचार के समग्र प्रभाव को अधिक सार्थक रूप से अभिव्यक्त करती है। कृशकाय तथा हृष्ट-पुष्ट शरीरों वाले जनसमूहों की रचनाओं में भयभीत जनसमूह तथा उग्र भीड़ के दृश्यों से हमें उस काल की उन्मत्त गतिविधियों तथा अस्त-व्यस्तता का आभास होता है। यद्यपि 'कायबंधों' से जटिल अरबस्को बनते हैं परंतु भीड़ में दरबारी तथा सामान्य जन के बीच भेद कर पाना कठिन हो जाता है।



13. ग्रामीण महिला
(अजंता, गुफा X)

अंतरीय
कच्छा शैली में पहना जाने वाला जांघिया

उत्तरीय
मोटे कपड़े का सजी हुई चौड़ी किनारी का, जिसे सिर पर आड़ा-तिरछा पहना जाता है तथा कंधों पर पीछे डाल लिया जाता है।

मेखला
रेखाचित्र में दिखाई गई स्त्री ने माणिकों की दो लड़ियों का कमरबंद कूल्हे पर पहना हुआ है।

लंबनम
रेखाचित्र में दिखाई गई बाएं ओर की स्त्री के गले में फुलकारा शैली का हार है; दूसरी स्त्री ने माणिकों की एक लड़ी की साधारण माला पहन रखी है।

कर्णिका
रेखाचित्र में दिखाई गई दाएं ओर की स्त्री ने चक्र के प्रकार के कर्णफूल पहने हुए हैं जिन्हें 'देहरी' कहा जाता है।

कंगन
दाएं ओर की स्त्री द्वारा सीप अथवा हाथी दांत की क्रमबद्ध चूड़ियां पहनी गई हैं।

कड़ा
दाएं ओर की स्त्री पांव में केवल एक भारी कड़ा पहनती है, दूसरी स्त्री प्रत्येक पांव में दानेदार नमूने के तीन बड़े कड़े पहनती है।

बाजूबंद
उठी हुई किनारियों का एक चौड़ा बंद अथवा दो संकरे बंद

केश-विन्यास
गुद्दी पर लंबा जूड़ा

बिंदी
पेशानी पर मुद्रित अथवा चिपकाई हुई



14 दरबारी परिचारक
(अजंता, गुफा X)

अंतरीय
शुद्ध सूती कपड़े का

कायबंध
कमर के सामने चकरी गिरह में बंधी संकरी पट्टिका

कंठा
'फलकारा' शैली का हार

कर्णिका
चक्र के प्रकार के कर्णफूल जिन्हें 'देहरी' कहते हैं।

कंगन
सादे तथा दानेदार, दोनों प्रकार के जैसे कि स्त्री के बाएं हाथ पर रेखाचित्र में दिखाई दे रहे हैं।

केश-विन्यास
मध्य में मांग, कंधों पर झूलते बिखरे केश तथा सजावटी जंजीरों से सजे हुए

सितारा
पेशानी पर लगा गोल चक्र, मुद्रित अथवा चिपकाया हुआ *स्त्री के हाथ में उस समय का परिचायक एक पंखा है।*



15 नाग सम्राट
(अजंता, गुफा IX)

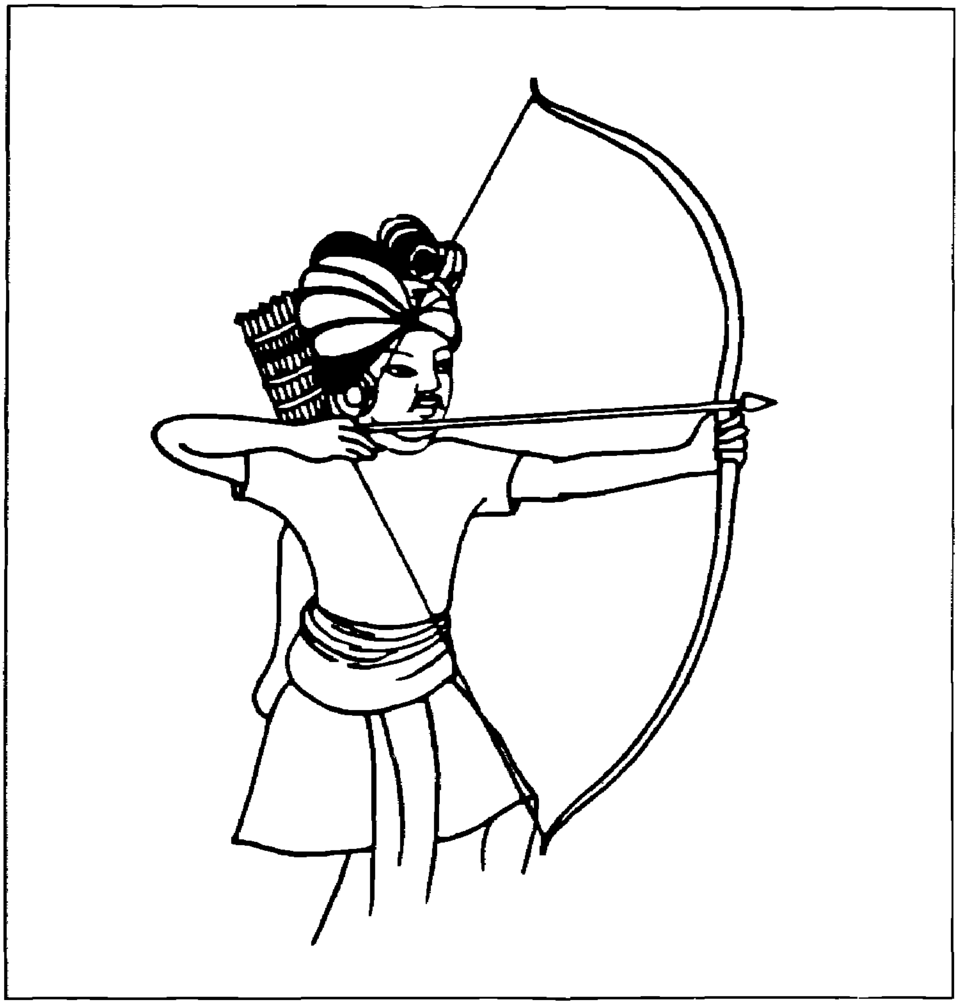
कंठा
चौड़ा चपटा छोटा हार जिसमें चार (अशुद्ध धातु) लटकन हैं।

कर्णिका
सजावटी नमूने के बड़े गोलाकार कर्णफूल (अशुद्ध धातु)

कंगन
भारी गोलाकार कंगन (अशुद्ध धातु)

बाजूबंद
लटकनों के साथ गोलाकार का भारी बाजूबंद (अशुद्ध धातु)

शिरोवस्त्र
पगड़ी सिर के चारों ओर लपेटी जाती है तथा उसे एक सजावटी बंद से थामा जाता है; लंबे केश जैसे कि आदिवासियों द्वारा रखे जाते हैं। उन्हें ऊंची चोटी में गूंथा गया है और सर्पों के फन जैसी पट्टियों के साथ पांच कलगियां हैं।



16 शिकारी के रूप में सम्राट
(अंजता, गुफा X)

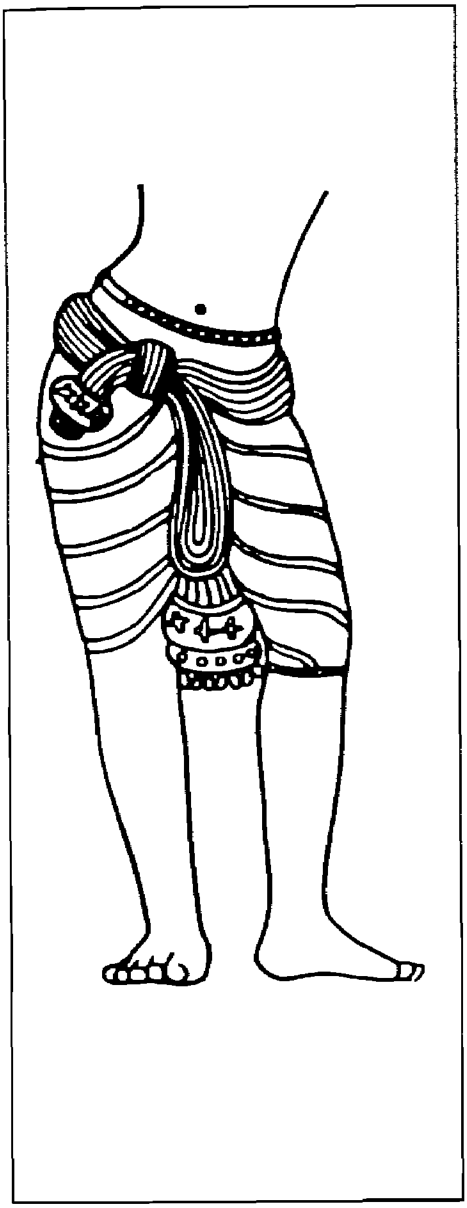
कंचुक
मध्य जांघ तक लंबा गोल गले का कुरता तथा मगयार जैसी ओछी आस्तीनें

कायबंध
चौड़ा, कमर के चारों ओर कई लपेटे लगाकर बांधकर पहना जाने वाला

उष्णीश
केशों के साथ सिर पर घुमाकर बांधा जाने वाला पगड़ी का कपड़ा जिस पर ऊपर गांठ लगाकर शेष कपड़े को सिर के चारों ओर बांधा जाता है।

कर्णिका
'कुंडल' जैसी अंगूठी के नमूने के कर्णफूल

यद्यपि दिखाई नहीं देता, एक छोटा लंगोटी जैसा अंतरीय पहना जाता है।



17 राजकुमार
(अमरावती, प्रथम काल)

अंतरीय
घुटनों के नीचे तक 'कच्छे' की शैली में पहना जाने वाला; धारियां वस्त्र की तहें दर्शाती हैं

कायबंध
'कक्ष्य' शैली का कूल्हों पर आड़ा पहना जाने वाला सुंदर अलंकारी नोक का एक मोटा गोल कपड़ा जिसमें लंबी फंदेदार गांठ लगाई जाती है।

पेटी
दानेदार बनावट की पेटी जो 'अंतरीय' से ऊंची पहनी जाती है।



18. परिचारिकाएं
(अजंता, गुफा X)

चित्र में दिखाई गई बाएं ओर की परिचारिका अपने केशों में बाईं ओर मांग निकालती है तथा केश कंधों तक लटके हुए रहते हैं, उसके कर्णफूल लटकन की बनावट के होते हैं, चित्र में दाईं ओर दिखाई गई परिचारिका छत्री-बरदार अथवा 'छत्रधार' है, वह अपने केश पीछे की ओर करके ऊपर गांठ बांधती है।

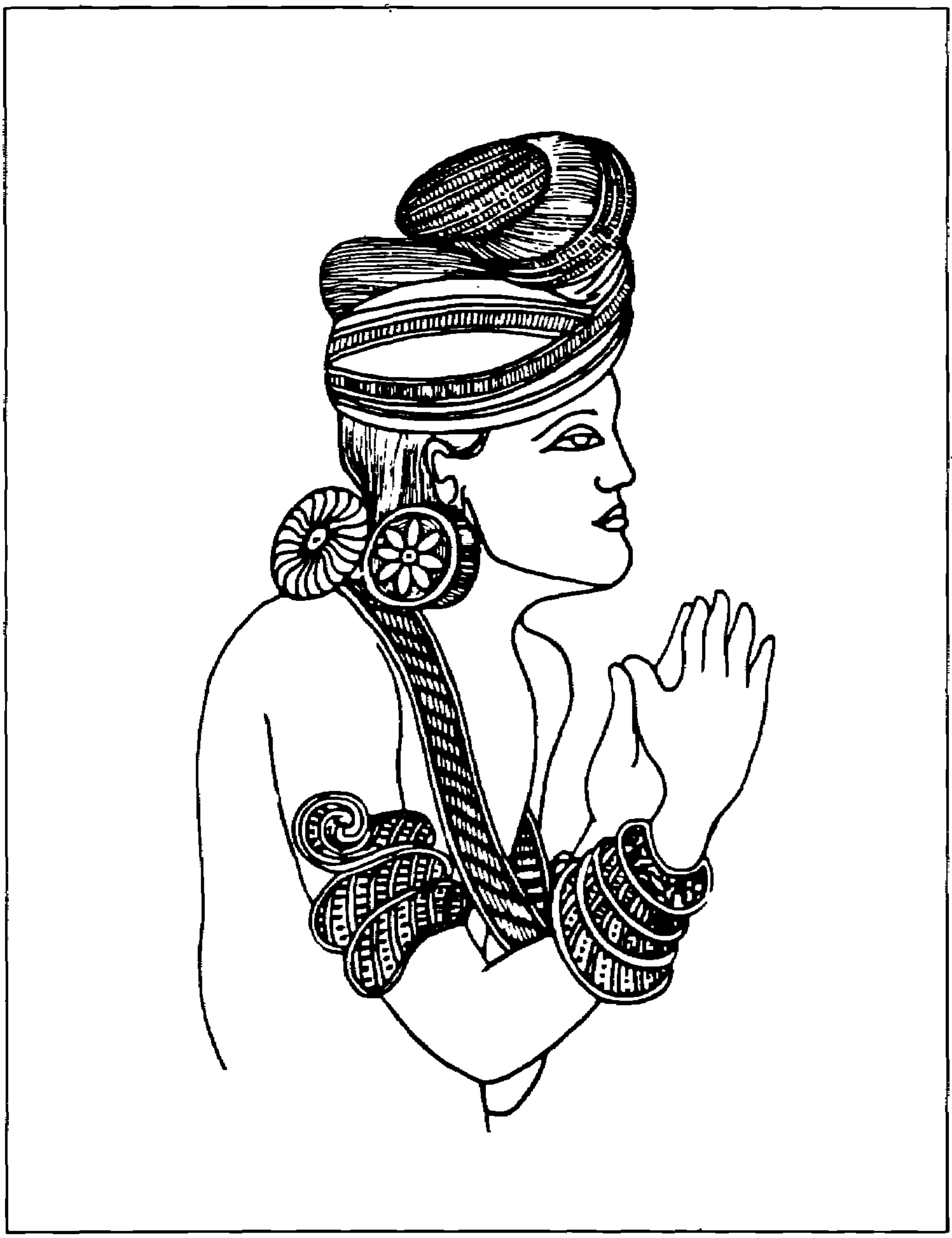
छत्रीधारी सामान्यतया महिला होती थी। छत्री सामान्य रूप से रंगीन होती थी तथा उसके हत्थे पर सोने की कारीगरी होती थी, सफेद रंग की छत्री केवल सम्राट की निशानी थी।



19 दरबारी

(अजंता, गुफा X)

'शंख-कवच' की गांठ में केशों को आगे निकालकर सजाते हैं; केशों को यथास्थान बनाए रखने के लिए संभवतया फीते का उपयोग किया जाता है; कर्णफूल चक्र के प्रकार के होते हैं तथा हार 'फलकारा' शैली का होता है; अंतराल से चपटे टुकड़े जंजीरों से जुड़े हुए होते हैं।



20 नाग राजकुमार
(अजंता, गुफा IX)

केशों को सिर के मध्य में चोटी में गांठ लगाकर व्यवस्थित किया जाता है तथा गांठ के चारों ओर पगड़ी को लपेटा जाता है, चोटी की गांठ को मध्य में जड़ाऊ पिन से सजाया जाता है; कर्णफूल दोहरे चक्र के स्वरूप के होते हैं। हार, कंगन तथा बाजूबंद अशुद्ध धातु से बनाए जाते हैं तथा संभवतया पोले होते हैं।



21 सैनिक
(अजंता, गुफा X)

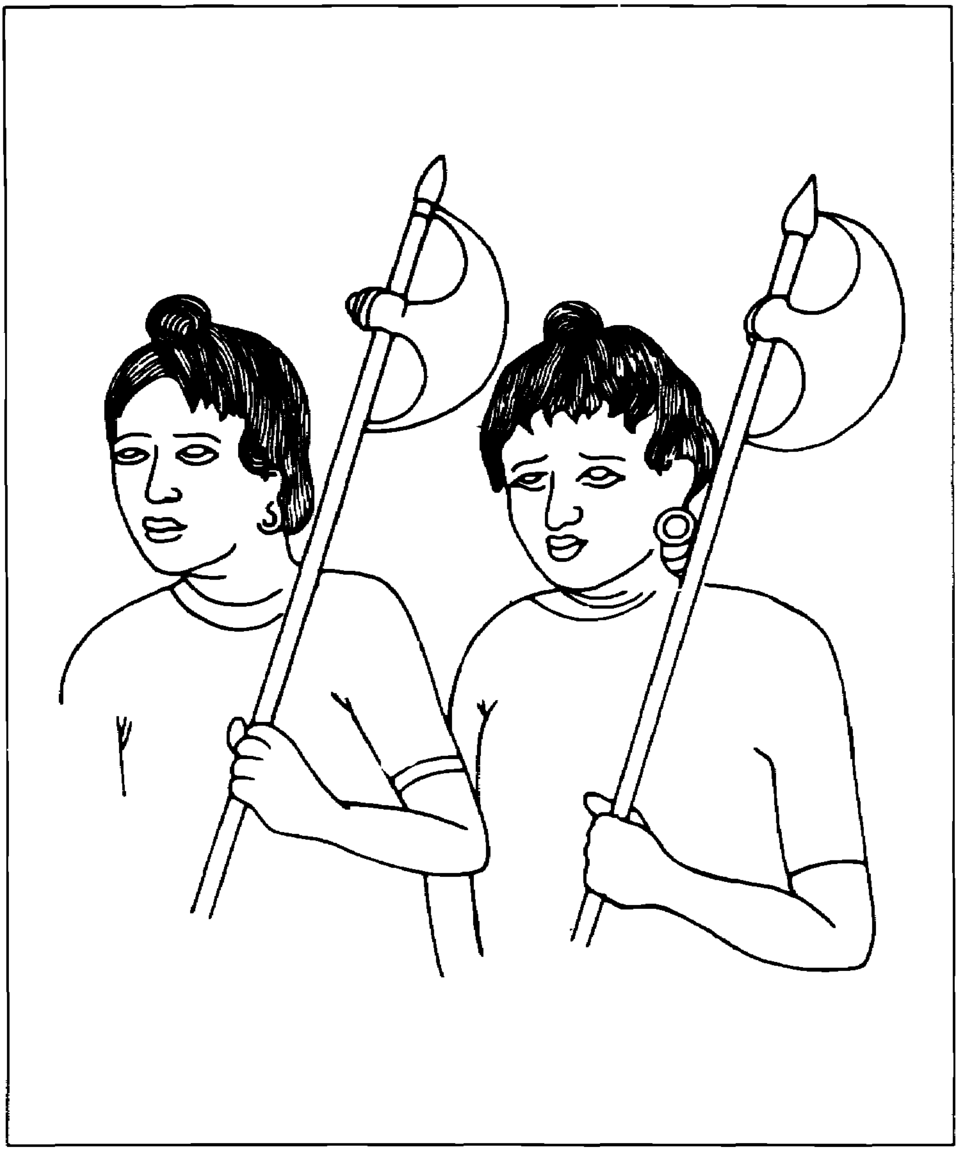
कंचुक
छोटी आस्तीन का जंघा के मध्य तक लंबा कुरता

उत्तरीय
भुजाओं को खुला रखने के लिए गले के चारों ओर बंधा हुआ

कर्णिका
चक्र के प्रकार के कर्णफूल जिन्हें 'देहरी' कहते हैं।

उष्णीश
केशों की दोहरी चोटी की गांठ के चारों ओर बंधी पगड़ी

वे अपने हाथों में एक प्रकार का भाला लिए हुए हैं।



22. सैनिक

(अजंता, गुफा X)

कंचुक

दोनों के छोटी आस्तीन के गोल गले के कुरते हैं, स्पष्ट है कि कुरतों के गले पीछे की ओर खुलते हैं।

कर्णिका

'कुंडल' अथवा अंगूठी के जैसे कर्णफूल

केश-विन्यास

सिर के मध्य में चोटी की गांठ बिलकुल दक्षिण मणिपुर तथा बर्मा के पहाड़ी लोगों जैसी जिन्हें 'चिन' कहते हैं।

उनके हाथों में फरसे हैं।



23. स्त्री
(अमरावती, चौथा काल)

घाघरी
घुटनों तक लंबा घाघरा जिसमें संभवतया कमर पर लंबा नाड़ा होता है।

कायबंध
साधारण 'वीथिका' शैली का, परंतु लंबा तथा कमर में अनेक बार लपेटा हुआ

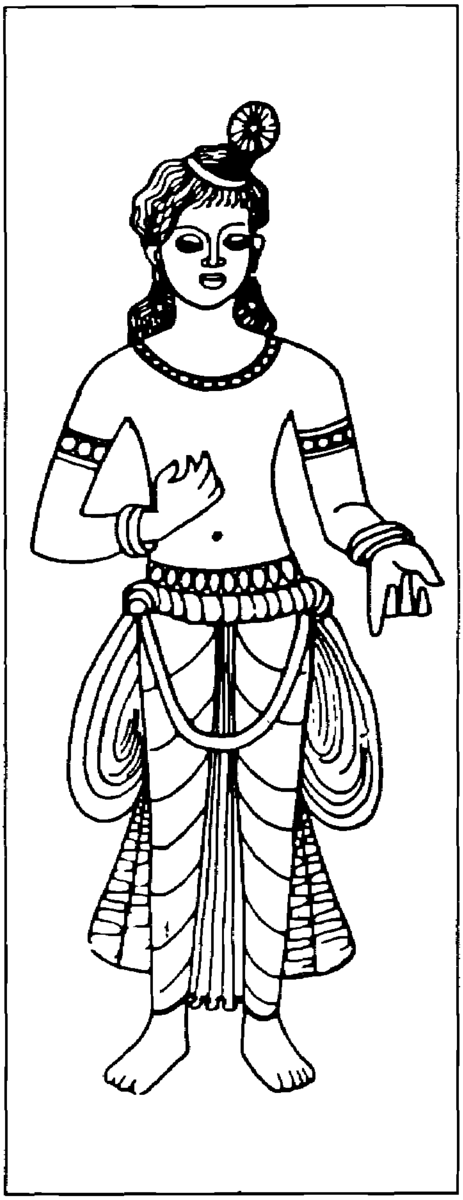
उत्तरीय
कूल्हों पर ढीला बंधा हुआ तथा बाएं कंधे को ढके हुए

वलय
हाथी दांत अथवा गैंडे की सींग की कई चूड़ियां

कुंडल
अंगूठी जैसे कर्णफूल

मंजीरा
हल्के पोले पाजेब, दो कुंडलों में, चलने पर बजने की ध्वनि

केश-विन्यास
गुद्दी पर पीछे चोटी की साधारण गांठ



24. सम्राट
(नागार्जुनकुंड)

अंतरीय
कच्छा शैली में पहना जाने वाला टखनों तक लटका हुआ, सभी चुन्नटें पीछे बांधी हुई तथा सामने टांगों के बीच दिखाई देतीं

कायबंध
कई तहों में लपेटा हुआ तथा कमर पर मोड़ा हुआ, दोनों ओर मनोहारी ढंग से कुंडलित लटका हुआ तथा एक रस्सी जैसा फंदा सामने पड़ा हुआ

पेटी
सजावटी पेटी

कंठा
छोटा हार

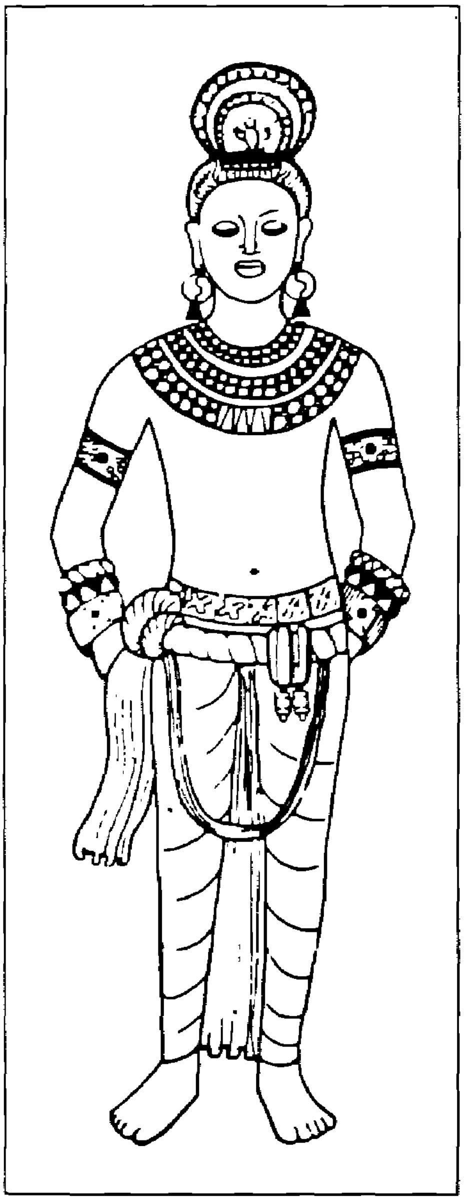
केयूर
सीधी किनारी के दबे हुए अथवा जरदोजी के बाजूबंद

कुंडल
अंगूठी जैसे कर्णफूल

वलय
कलाइयों में साधारण चूड़ियां

केश-विन्यास
कंधों पर पड़े हुए, पेशानी पर छोटे झब्बे

शिरोभूषण
चोटी अथवा सरबंद से जुड़ी एक सजावटी चक्रिका



25. राजकुमार
(गोली)

अंतरीय
आकृति 24 जैसी शैली में पहना जाने वाला

कायबंध
कमर के चारों ओर रस्सी के जैसे मुड़ा हुआ, उसके बाद दो बार मोड़कर दाएं कूल्हे पर एक गांठ का रूप लिए हुए; अन्य सिरा सामने के सिरों पर दो अलंकारी नोकों पर ठहरा हुआ

पेटी
अलंकारी पेटी

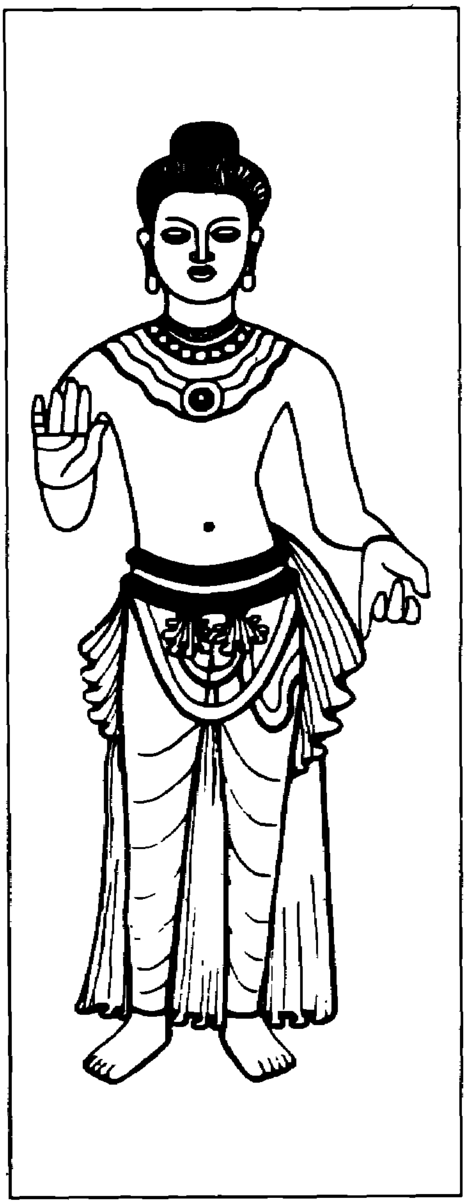
कंठा
तीन विभिन्न आकारों के कंठे जो कालर के रूप में एक साथ पहने जाते हैं।

केयूर
चपटे सजावटी बाजूबंद

वलय
हर हाथ में किसी भारी धातु अथवा हड्डी के तीन कंगन जो विभिन्न स्वरूपों में उत्कीर्ण होते हैं।

कुंडल
अंगूठी के रूप के फुंदने लगे कर्णफूल

शिरोभूषण
'जटा' अथवा केशों की चोटी पर लगाई जाने वाली अलंकारी चक्रिका



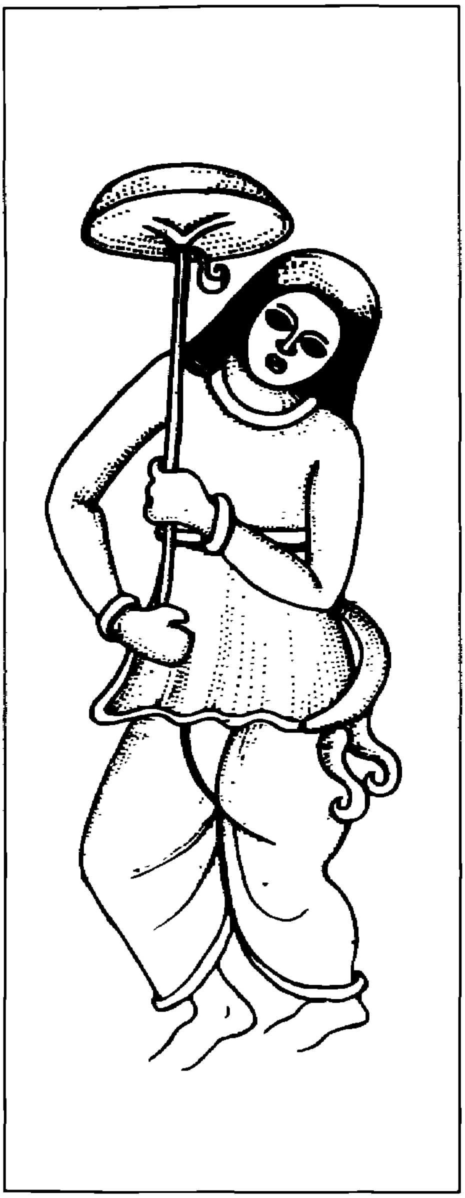
26. राजकुमार
(नागार्जुनकुंड)

अंतरीय
कच्छा शैली में पहना जाने वाला तथा मछली की दोहरी पूंछ की शैली में पीछे फैलाया हुआ; सामने की छोटी झालर कमर के 'नाड़े' पर अंतरीय का फुलाव हो सकती है।

कायबंध
कमर पर दो बार लपेटा हुआ, उसके बाद सामने इस प्रकार फंदा लगाकर पहना हुआ कि दोनों सिरे ढीली झालर के रूप में फैले हुए।

कंठा
कालर जैसा हार

केश-विन्यास
ऊपर चोटी की गांठ



27. छत्रधार : छत्रीधारी
(दक्षिण भारत)

अंतरीय
टखनों से थोड़ा ऊपर लटका हुआ; कच्छा शैली में, चुन्नटों के सिरे टांगों के बीच से निकाले हुए तथा पीछे मध्य में बांधे हुए

कंचुक
लंबी आस्तीन का पाएंचे की लंबाई का कुरता तथा गोल गला

कायबंध
साधारण 'वीथिका' शैली में, पीछे बंधे हुए झूलते सिरे

छत्री
सफेद रंग की, हत्थे पर सोने का काम

केश-विन्यास
साधारण, पीछे लहराते लटके हुए



28. द्वारपाल
(नागार्जुनकुंड)

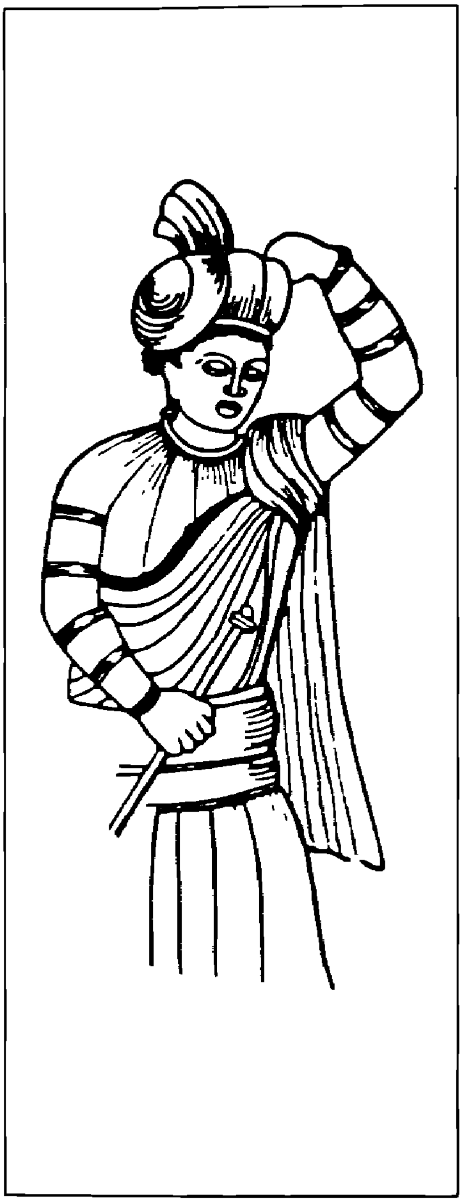
कंचुक
मोटे कपड़े का टखनों तक लंबा कुरता, झालर वाली लंबी आस्तीन, चुन्नटदार गला

चूड़ीदार
चूड़ीदार पायजामा

कायबंध
कमर के चारों ओर कई तहों में लपेटा हुआ

शिरोवस्त्र
ऊंची चोटी का कंटोप जिसे 'सिरस्त्र' कहते हैं।

कंठी
गुंथे हुए तारों का हार



29. परिचारक
(नागार्जुनकुंड)

कंचुक
संभवतया टखनों तक लंबा, एक फीते का चुन्नटदार गला तथा गोटे की धारियों से सजी लंबी आस्तीनें

उत्तरीय
भारी तथा लंबा, वक्ष पर तिरछा तथा दाएं कंधे के चारों ओर ओढ़ा हुआ

कायबंध
भारी, कमर पर दो बार बांधा हुआ

शिरोभूषण
पंखे की शक्ल की झालरदार पगड़ी

संभवतया उत्सवों का मुखिया होने के कारण उसके पास कर्मचारी-वर्ग भी होता था।



30. पुरुष
(अजंता, गुफा X)

उष्णीश
एक गांठ में आकस्मिक रूप से बांधी हुई पगड़ी जिसका एक सिरा ऊपर तथा दूसरा नीचे की ओर जाता है।

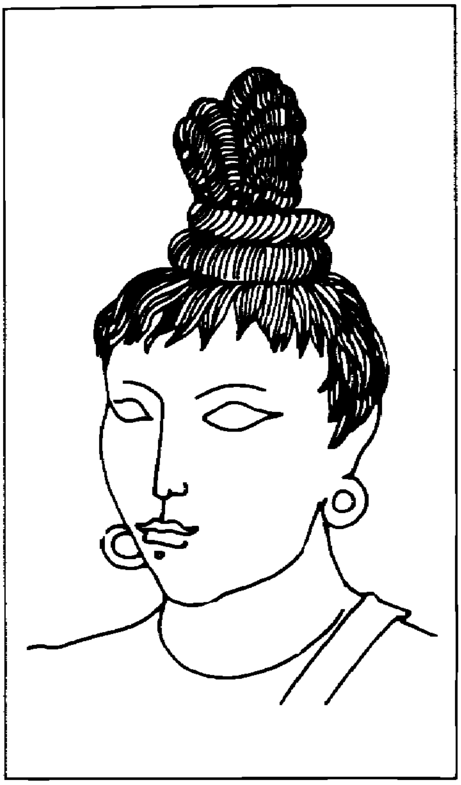
कुंडल
लटकी हुई चक्रिका के रूप के कर्णफूल
←

31. स्त्री
(अजंता, गुफा X)

किरीट
मुकुट जैसा शिरोभूषण सामने अर्द्धवृत्ताकार आधार तथा पृष्ठभाग में कमल के बड़े आकार की पंखुड़ियां

कुंडल
अंगूठी के स्वरूप के बड़े कर्णफूल →





32. राजकुमार
(नागार्जुनकुंड)

लंबे केशों को कई फंदों में गूंथा जाता है जिन्हें दो गुंथे कुंडल धारण करते हैं, छोटे केश चेहरे पर लटके रहते हैं।

←

33. बुद्ध
(गोली)

अंतरीय
लहंगा शैली में पहना जाने वाला

उत्तरीय
ऊपर के कपड़े पर गोट लगी होती है तथा बाएं कंधे को दिलचस्प रूप में ढके हुए पांचे की लंबाई में पीठ पर लटका रहता है

केश-विन्यास
चोटी में गांठ

उपदेशक के रूप में बुद्ध के इस चित्रण से उन वस्त्रों का अनुमान लगाया जा सकता है जो उन बौद्ध भिक्षुओं द्वारा पहने जाते थे जो उपदेश देने के लिए भारत तथा विदेश में यात्रा करते थे।

→





34. बुद्ध
(गोली)

अंतरीय
लहंगा शैली में पहना जाने वाला लगभग टखनों तक लंबा

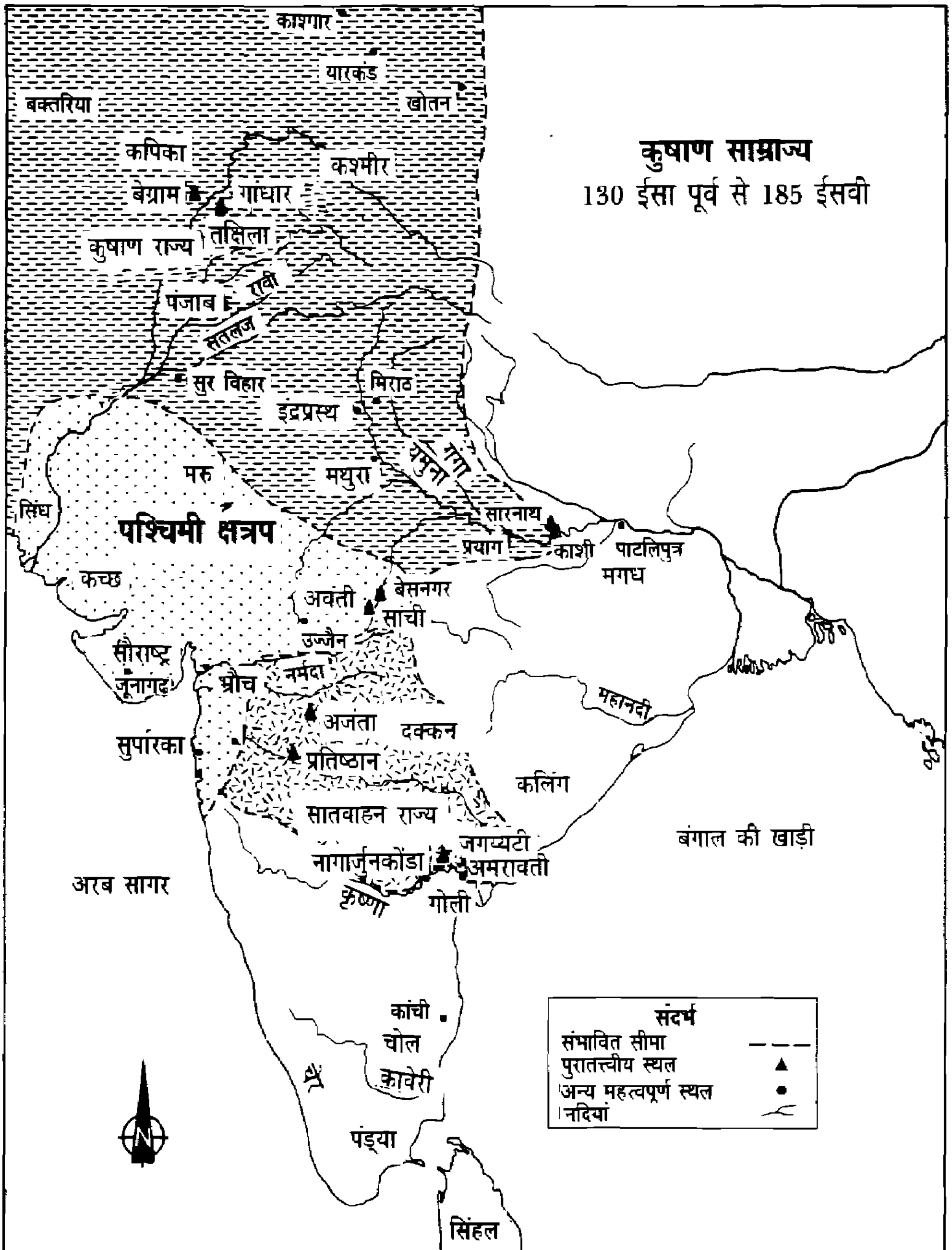
उत्तरीय
शरीर को ढके हुए ऊपर का चौड़ा कपड़ा जिसकी तहें बाएं हाथ पर रखी हुई हैं।

केश-विन्यास
चोटी का जूड़ा

बुद्ध का यह चित्रण उनकी पत्नी यशोधरा के यहां जाते समय का है। उत्तरीय एक बड़ी चादर के रूप में भी हो सकता था जिसका उपयोग यात्रा के समय किया जाता है।

कुषाण काल

(130 ईसा पूर्व—185 ई.)



कुषाण साम्राज्य
130 ईसा पूर्व से 185 ईसवी
काशगार
यारकंड
बक्तरिया
खोतन
कपिका
कश्मीर
बेग्राम
गांधार
तक्षिला
कुषाण राज्य
पंजाब
रावी
सतलज
सुर विहार
मिराठ
इंद्रप्रस्थ
मरु
मथुरा
यमुना
गंगा
सिंध
पश्चिमी क्षत्रप
सारनाथ
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
मगध
कच्छ
अवंती
बेसनगर
सांची
उज्जैन
सौराष्ट्र
जूनागढ़
भ्रोच
नर्मदा
महानदी
अजंता
दक्कन
सुर्पारका
प्रतिष्ठान
कलिंग
सातवाहन राज्य
जगय्यपेटी
नागार्जुनकोंडा
अमरावती
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
कृष्णा
गोली
कांची
चोल
कावेरी
पंड्या
सिंहल
भारतीय
महासागर
संदर्भ
संभावित सीमा
पुरातत्त्वीय स्थल
अन्य महत्वपूर्ण स्थल
नदियां

कुषाण काल

(130 ईसा पूर्व–185 ई.)

वेशभूषाओं के महत्व के मुख्य पुरातत्वीय स्थल

- मथुरा
- बेसनगर
- बेग्राम
- तक्षिला
- गांधार (सीमित-रूप में, क्योंकि विशेष बल ग्रीको-रोमन वेशभूषा पर था)

इतिहास और सामाजिक जीवन

कुषाणों ने अपने साम्राज्य की स्थापना प्रथम शताब्दी ईसवी में की थी तथा वे दूसरी शताब्दी ईसवी के एक भाग में सातवाहनों (आंध्र) व पश्चिमी क्षत्रपों (साकाओं) के राज्यों के समकालीन थे।

मौर्य साम्राज्य की राजनीतिक स्थिरता के विपरीत यह काल शक्ति सीमाओं के निरंतर परिवर्तन तथा अत्यधिक सांस्कृतिक और भाषाई भिन्नताओं का काल था। इस काल का एकमात्र संगत उपादान व्यापार था जो मौर्य काल में प्रारंभ किया गया था क्योंकि स्थिर सरकार ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में संचारण सुनिश्चित किया था तथा सक्रिय आंतरिक व्यापार को प्रोत्साहित किया था। राजदूतों के माध्यम से पश्चिम एशिया तथा भूमध्यसागरीय अनेक भागों से संपर्क स्थापित किया गया था। यह स्वाभाविक ही है कि इससे विदेशी व्यापार में सहायता मिली तथा कुषाण, साका एवं इंडो-ग्रीक जैसे विदेशियों के निरंतर आगमन ने इन क्षेत्रों से होने वाले व्यापार को और भी अधिक प्रेरित किया।

कुषाण कला में दो पूर्णतया भिन्न शैलियां हैं। साम्राज्य के उत्तर में गांधार का निर्माण पूर्वी रोम के शिल्पकारों ने किया था, जो बौद्ध धर्म के संयोजकों

द्वारा नियोजित किए गए थे। ये शिल्पकार अपने साथ मूर्तिकला के वस्त्र-विन्यास की ग्रीको-रोमन शैली लाए थे, तथा यही कारण है कि जिन बौद्धों का प्रतिनिधित्व हुआ है, उन्होंने शास्त्रीय यूनानी तथा रोमी वस्त्र धारण किए हुए थे, यथा 'चीटन', 'राइमेशन', 'स्टोल', 'ट्यूनिक', 'क्लैमिस', आदि।

कुषाण कला की दूसरी शैली वह थी जिसका सूत्रपात मथुरा में हुआ था, जो इस साम्राज्य की दक्षिणी राजधानी थी। यह शैली आदि भारतीय स्कूल की भरहुत और सांची की सीधे रूप में क्रमिक शैली थी। परंतु कुषाण वेशभूषा की अपेक्षाकृत वास्तविक साफ तस्वीर अफगानिस्तान में सुर्ख कोतल की मूर्तिकला में दृष्टिगत होती है जिस पर पारथियन (पूर्वी ईरान) शैली का प्रभाव था। कुषाणों की भांति पारथियन स्वयं भी साइथिक वंश के थे तथा उनकी वेशभूषा भी वही थी, जो मथुरा में मिले कुषाण सम्राट कनिष्क के चित्र से काफी मिलती-जुलती है। उत्तर वर्णित कुषाण सम्राट ने कुरते और पायजामे के अतिरिक्त फस्लाइन का कोट अथवा 'पुस्तिन' पहना हुआ है, जो सुर्ख कोतल में भी दिखाई देता है।

जैसा कि पूर्व में वर्णित है, इस काल में किसी प्रकार की एकरूपता नहीं थी तथा प्रत्येक क्षेत्र के रहने वालों के वस्त्रों में विविधता थी। साधारण वस्त्रों में, जैसा कि प्रायः होता है, एक 'अंतरीय', 'उत्तरीय' तथा 'कायबंध' होता था तथा पुरुषों के लिए एक पगड़ी होती थी। कुषाणों के उद्भव के पश्चात मध्य एशिया के स्वरूप का विस्तार हुआ तथा उत्तर भारत के सभी वर्ग के लोगों में सिले हुए वस्त्र पहनने का फैशन बढ़ा। कटाई-सिलाई की वेशभूषा जो पूर्व कालों की मूर्तिकला में यदा-कदा ही दिखाई देती थी, इस काल में सामान्य रूप से दिखाई देती है।

वेशभूषा

कुषाण वेशभूषा को प्रमुख रूप से पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (1) देशज व्यक्ति—'अंतरीय', 'उत्तरीय' तथा 'कायबंध', (2) अंतःपुर के रक्षक तथा परिचारक—प्रायः देशीय सिला हुआ 'कंचुक', रंग में लाल-भूरा, (3) विदेशी कुषाण शासक और उनके संगी-साथी, तथा (4) अन्य विदेशी, जैसे साईस, व्यापारी, आदि। एक पांचवां वर्ग भी था—विदेशी तथा देशी वेशभूषा का मिला-जुला रूप। अंतिम वर्ग बहुत ही दिलचस्प था क्योंकि इससे यह प्रकट होता था कि किस प्रकार वस्त्रों में परिवर्तन आया तथा उनका क्रमिक विकास हुआ, किस प्रकार

भारतीयों द्वारा पहने जाने वाली वेशभूषा कटाई-सिलाई की वेशभूषा में परिवर्तित हुई, विशेष रूप से उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भाग में जहां ये प्रभाव अधिक महसूस किए जा रहे थे, और जहां मिली-जुली वेशभूषा मौसम के अनुसार अधिक अनुकूल थी।

कुषाण (इंडो-साइथियन) वस्त्र खानाबदोश संस्कृति की उपज थे जो घोड़ों के उपयोग पर आधारित थी। यह संस्कृति मथुरा, तक्षिला, बेग्राम तथा अफगानिस्तान में सुर्ख कोतल में दिखाई देती है। ये वस्त्र अधिकतर साइथियन तथा ईरानी प्रजातियों द्वारा पहने जाते थे, जो विशेष रूप से पारथियनों से मिलते थे। इन वस्त्रों में लंबी आस्तीन का झालरदार साधारण अथवा सजावटी कुरता होता था जिसमें गला खोलने के लिए एक शिगाफ होता था। टखनों तक की लंबाई का कुरता चुस्त सिला हुआ होता था तथा यह कभी-कभी चमड़े का होता था जिसे एक छोटे चोगे अथवा पिंडली तक लंबे ऊनी कोट अथवा 'केफटन' के साथ ढीला अथवा दाएं से बाएं तिरछा पहना जाता था व चमड़े अथवा धातु की पेटी से बांधा जाता था। पूर्व वर्णित इन दो ऊपरी वेशभूषाओं के साथ कभी-कभी एक तीसरी वेशभूषा 'चोगे' का भी उपयोग किया जाता था। 'चोगा' कोट के जैसा होता था तथा इसे वक्ष के नीचे किनारों पर गोट से सजाया जाता था और चलने-फिरने में सुविधा की दृष्टि से इसमें एक शिगाफ होता था। पायजामा ग्रीष्म ऋतु में लिनन, रेशम अथवा मलमल का भी हो सकता था किंतु शरद ऋतु में ऊन या दुलाई का होता था। इन ढीले या चुस्त पायजामों या 'छलना' के पाएंचे नर्म गद्दे के बूटों में समेटकर बांध लिए जाते थे, जिनके फीते चमड़े 'खपूसा' के होते थे। इसके साथ साइथियन नोकदार नमदे की टोपी 'बाशिल्क' अथवा चोटीदार कंटोपा या पीछे बंधे दो लंबे सिरों का सिरबंद पहना जाता था।

यद्यपि ये वस्त्र साधारण कोटि के होते थे, परंतु इन्हें प्रायः सोने के ठप्पों अथवा धातु की प्लेटों से सजाया जाता था जो चौड़ी, आयताकार, गोलाकार अथवा त्रिभुजाकार रेखाओं में अथवा कुरते के बीच की सीवन में सिले होते थे। यद्यपि इसका प्रयोजन सजावट था किंतु यह क्रियात्मक भी था क्योंकि इससे कुरते को सवारी के समय बीच में सीवन से समेटकर कपड़े को ऊपर उठाने में सहायता मिलती थी। यह गोट की किनारी के सिरे पर कपड़े की चार नुकीली चुन्नटों का प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक होता था। मध्य में सामने सिली हुई सोने अथवा धातु की प्लेटों के माध्यम से पायजामे के कपड़े के घेर को यथास्थान बनाए रखने में सहायता मिलती थी। यहां यह जानना दिलचस्प होगा कि आगे

चलकर इन कशीदाकारी की अलंकारी पट्टियों ने इन सोने अथवा धातु की प्लेटों के चलन को बदल दिया। साका योद्धाओं द्वारा पूर्व संस्करण का उपयोग ही किया जाता रहा, जो घोड़े पर चढ़ते समय घुटनों को समेटने में होने वाली सुविधा के लिए कुरते को आसानी से उठाकर बेल्ट के दोनों ओर खोंस लेते थे।

स्त्रियों के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्र थे। गांधार में साड़ी जैसी वेशभूषा धारण किए महिला-आकृतियां मिलती हैं। इस वेशभूषा की उत्पत्ति पामीरिन (ग्रीको-रोमन) अथवा ठेठ रोम के वस्त्रों से हुई प्रतीत होती है। यह 'पल्ला' होता है (वेशभूषा का आवरण जो झालरदार आस्तीन के लंबे चोगे पर पहना जाता है तथा जो रोम के मेट्रन की विशेष वेशभूषा है) जिसे बाएं कंधे पर टांका जाता है। गांधार की कुछेक महिला-आकृतियों की वेशभूषा में यह एक भिन्नता है कि वे इसके साथ एक 'अंतरीय' भी पहनती हैं जिसे लंबाई में बढ़ा लिया जाता है। यह लंबा अंतरीय 'लांगदार' शैली में पहना जाता है परंतु इसके एक सिरे को 'पल्ला' की भांति उठाकर बाएं कंधे पर रख लिया जाता है। यह समस्त दृश्य काफी कुछ आज की दक्खिनी साड़ी जैसा दिखाई देता है। नीचे झालरदार आस्तीनें दिखाई देती हैं जिन्हें रोम के लंबे चोगे (स्टोला) का छोटा रूप कहा जा सकता है, जिसे वक्ष को ढकने के लिए पहना जाता है। इसके अतिरिक्त विशिष्ट भारतीय 'उत्तरीय' पीठ पर तिरछा तथा दोनों हाथों के ऊपर पहना जाता है तथा भारतीय आभूषणों द्वारा यह दृश्य पूर्ण होता है। साड़ी के साथ 'उत्तरीय' पहनने का चलन आज भी महाराष्ट्र के साधारण मछुआरों में है।

ये गांधार आकृतियां कुषाण काल की मूर्तिकला के प्रति कुतूहल उत्पन्न करने वाली हैं तथा इसे साड़ी के उपयोग के प्रारंभ के रूप में देखा जा सकता है। इसे वक्ष को ढकने के लिए किसी वेशभूषा के सृजन के आरंभिक प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है। यह प्रयास विदेशी तथा देशी वेशभूषाओं के मिले-जुले रूप के वर्ग में आएगा। एक अन्य महिला आकृति में हमें ईरानी प्रभाव का घुटनों अथवा जांघ के मध्य की लंबाई का कुरता 'स्तानामसुक' भी मिलता है, जो 'अंतरीय' के साथ पहना जाता था जिसे 'कच्छा' अथवा 'लांगदार' शैली की तरह टांगों के बीच से नहीं निकाला जाता परंतु चारों ओर 'लहंगा' के जैसे पहना जाता है। साधारण सिला हुआ घाघरा 'घाघरी' जिसमें एक ओर सीवन और कमर पर घाघरे को बांधे रखने के लिए 'नाड़ा' अथवा डोरी होती है, भी देखे गए हैं। घाघरों में लगभग 6-8 फीट की लंबी कलियां समेटी हुई होती थीं तथा उनके किनारों व सीवन के सामने सजावटी गोट होती थी। 'स्तानामसुक' कुरता लंबी आस्तीनों तथा ढंग से की गई काट का होता था जिसमें

साधारण गोल गला होता था तथा उसके किनारों पर गोट लगी होती थी। इसके अतिरिक्त कभी-कभी 'लहंगा' शैली में 'अंतरीय' और 'उत्तरीय' भी पहना जाता था। परंतु इसमें बहुत कम आभूषणों का प्रयोग होता था।

कुछ ऐसी महिला-आकृतियां भी हैं जिनमें महिलाओं द्वारा लंबी आस्तीन की जाकेट के साथ चुस्त काट के झालरदार पायजामे तथा 'उत्तरीय' पहने हुए हैं। पूर्व काल में यूनानी तथा ईरानी स्त्रियों द्वारा पतलून पहनी जाती थी। ऐसा कहा जाता है कि पतलून पहनने वाली ये वीरांगनाएं सम्राट की राजकीय रक्षक हुआ करती थीं। इन महिला रक्षकों ने अपनी स्वयं की फिरंगी वेशभूषा अपनाई हुई थी जिसमें जांघ के मध्य की लंबाई की कसी हुई जाकेट होती थी जो गले में तिरछी पहनी हुई होती थी तथा जिसके साथ एक समेटी हुई अथवा चुन्नटदार घाघरी होती थी जो 'अंतरीय' के साथ एक आड़ी 'वयकक्ष' के साथ पहनी जाती थी, जिसमें धातु के बक्कलों की ढाल और तलवार लगी होती थी। भारतीय इतिहास के अत्यंत पूर्व काल से ही संसार के अनेक भागों से सेवक और नृतक देश में लाए जाते रहे हैं। 'प्रवरा' तथा 'चादर' एक लंबी शाल, स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा ही ठंड से बचाव के लिए पहने जाते रहे तथा जैसा कि ज्ञात हुआ है इन्हें 'बकुल', 'चमेली' तथा अन्य गंधों से सुगंधित किया जाता था। शुद्ध देशज 'अंतरीय', 'उत्तरीय' तथा 'कायबंध' मामूली परिवर्तनों के साथ भारतीयों की मुख्य वेशभूषा बनी रही। 'कायबंध' ढीली पहनी जाने वाली औपचारिक पोशाक बन गई थी तथा कमर के लचीलेपन को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए मुख्य रूप से स्त्रियों द्वारा मोटे बंटे हुए कमरबंदों का लुभावना उपयोग किया जाता था।

शिरोभूषण और केश-विन्यास : स्त्री

इस काल में 'उत्तरीय' ओढ़ने की परंपरा लगभग लुप्त हो गई थी तथा देशज वेशभूषा पहनने वाली अधिकतर स्त्रियां खुले सिर दिखाई देती थीं। वे अपने केश पेशानी पर गुच्छे के रूप में रखती थीं, जिससे केशों की बीच की मांग की रेखा छिप जाती थी। केशों का यह गुच्छा एक गेंद अथवा चक्रिका के रूप में होता था; शेष केशों को पीछे लपेटकर गुद्दी पर जड़ाऊ पिन से अथवा जूड़े में बांध लिया जाता था जो गर्दन के सीधी ओर अथवा ऊपर सीधा बाहर निकला हुआ होता था। कभी-कभी कपड़े की एक चकरी-गिरह सिर की चोटी पर लगाई जाती थी तथा कभी एक 'स्मृति चिह्न' अथवा संदल की सुगंध या किसी अन्य

सुगंध का डिब्बा रिबन के माध्यम से जूड़े में बांध लिया जाता था। कई बार एक बंद या किरीट अथवा गुथी हुई डोरी या स्कार्फ भी सिर के चारों ओर या जूड़े पर बांध लिया जाता था।

एक रत्नजटित जाली 'रत्नावली' जड़ाऊ पिनें और सजावटी केश-पिनें पूर्व की भांति ही पहनी जाती थीं। जो पगड़ियां प्रायः पहनी जाती थीं, वे धारीदार कपड़े की बनी विदेशी नुकीली टोपियों के चारों ओर बांधी जाती थीं, तथा उन्हें मोतियों की लड़ियों अथवा मुकुट से सजाया जाता था। ऐसी कहावत थी कि पगड़ी में 'मीसोसा' वृक्ष की टहनी लगाने से बुरी नजर से बचा जा सकता है। पगड़ी में अशोक वृक्ष की टहनी लगाना प्रेम का प्रतीक समझा जाता था। लंबे केशों को खुला छोड़ने का साक्ष्य कम ही मिलता है किंतु केशों को एक या दो चोटियों में व्यवस्थित ढंग से बांधा जाता था तथा कभी-कभी पीछे के छोर पर बांध लिया जाता था या एक ओर लटका लिया जाता था। सामान्य स्त्रियां जैसा कि आज भी प्रचलन है, गुद्दी पर अपने केशों की साधारण गांठ बांधती थीं।

केशों की सज्जा के लिए फूलों का प्रयोग होता था तथा फूल-पत्तियों की मालाएं विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी भारत में स्त्रियों के जूड़ों में लगी हुई दिखाई देती थीं। पुष्पहारों का निर्यात रोम को होता था। ये पुष्पहार कपड़े की फूल-पत्तियों के बने हुए होते थे और कभी-कभी भड़कीले रंगों में रेशमी कपड़ों में विभिन्न रंगों में होते थे। किंतु 'सृजस' अथवा फूलों की मालाएं, जो विभिन्न प्रकार की होती थीं, कमर, गले व बालों की वेणी में पहनने का रिवाज था। कभी-कभी ये 'मूंज' घास, सरकंडों अथवा कपास के तनों के सहारे बनाए जाते थे। फूलों के अतिरिक्त मयूर पंखों, सींग, पत्तियों तथा फल व छोटे-छोटे फलों चिरमी के भी सजावटी गहने बनाए जाते थे।

शिरोभूषण और केश-विन्यास : पुरुष

पुरुष मौर्य-शुंग काल के पुरुषों जैसी पगड़ी पहनते रहे थे, जिसे अब 'मौली'' कहा जाता था। तथापि, साधारण किस्म का लपेटा हुआ कपड़ा अधिक दिखाई देता था जिसमें बालों के साथ पगड़ी के कपड़े को गूंथने की कोई विशेष पेचीदगी नहीं थी। सिरे के मध्य में अथवा एक ओर रहने वाली वह घुंडी जिसके चारों ओर ऊंचा उभार बनाने के लिए पगड़ी बांधी जाती थी, धीरे-धीरे अदृश्य हो गई थी। नंगे सिर रहने पर बालों में एक ऊंची गांठ लगाई जाती थी, अथवा

चकरी गिरह की शक्ल में गांठ बांधी जाती थी। नर्म घुंघराले बाल पेशानी पर पड़े रहते थे, या उत्तर-पश्चिम में गुद्दी पर सजते थे। पेशानी पर बंधे फीते और बंद सामान्य रूप से दिखाई देते थे। युवा वर्ग अपने बालों को छोटा तराशने लगा था और उन्होंने 'अंतरीय' के साथ एक छोटा कुरता जो लहंगे जैसा होता था, अपना लिया था। किरीट अथवा 'मुकुट' के जैसी साइथियन नुकीली टोपियों का प्रायः प्रयोग किया जाता था। आम आदमी या तो नंगे सिर फिरता था, अथवा अपने 'कायबंध' या 'उत्तरीय' का पगड़ी के रूप में धूप से बचाव के लिए ठीक उसी प्रकार प्रयोग करता था, जैसा कि लगभग आज भी देखा जा सकता है।

आभूषण

मौर्य-शुंग काल की तुलना में इस काल में परिष्कार तथा सादगी की ओर अधिक रुझान दिखाई देता है। इस काल में सोने का अधिक उपयोग किया जाता था तथा इसे 'हरण्य' और 'स्वर्ण' कहा जाता था। चांदी को रुपए तथा तांबे को 'ताम्र' के रूप में जाना जाता था, तथा आभूषण बनाने के लिए इनका निरंतर प्रयोग किया जाता था। सोने और चांदी में प्रायः 'रत्न' अथवा जवाहरात को जड़ा जाता था। इनमें जमुर्रूद, अकीक, लाजवर्द, जामनी, तामड़ा, मूंगा तथा मोती सम्मिलित थे। नीलम, पुखराज, हीरे तथा लहसुनिया विभिन्न तरीकों से जड़े जाते थे अथवा लड़ियों में पिरोए जाते थे, तथा इन्हें आभूषणों के रूप में पहना जाता था।

इसके अलावा मीनाकारी की कला का ज्ञान था, साथ ही सीप व मुक्ता की जड़ाई के काम की भी जानकारी थी। स्वर्ण मनकों को सुंदर ढंग से लाख में जड़ा जाता था या जेस्पर के बीजकोष में अलंकृत किया जाता था तथा फिरोजी चिप्पी में चिपकाकर डोरे या तार में बांधकर छोटे हार 'कंठी' के रूप में गले में पहना जाता था। लंबे कंठों को वक्ष के मध्य में पहना जाता था जिसे 'हार' कहा जाता था। सिक्कों की माला बनाकर हार के रूप में पहनने का चलन भी था जिसे 'निश्क' कहते थे। गुंथे हुए, रूपहले तारों की कंठी जो सोने के तारों का साधारण हार होती थी, विदेशियों द्वारा पहनी जाती थी। यह साइथियन और ब्रेल्टिक लोगों का विशेष आभूषण था तथा इसे फारस और पारथियन लोगों से प्रभेद के लिए पहना जाता था जो उसी वर्ग के थे, जिसके साका और कुशान होते थे। सीपी और पक्की मिट्टी के मनकों की मालाएं समाज के दरिद्र वर्ग

द्वारा पहनी जाती रही थीं। कर्णफूल 'कुंडल' तीन प्रकार के होते थे, तथा ये अधिकतर सोने के होते थे। किंतु हाथीदांत के कर्णफूल के साक्ष्य भी मिलते हैं। लटकन वाले कर्णफूलों में अधिकतर सजावटी गुलाब तथा दानेदार काम के होते थे। छल्ले के रूप के कर्णफूल साइथियन मूल के होते थे, जिन पर सोने के तार लिपटे होते थे, अथवा वे दोनों तरह के कर्णफूलों का मिला-जुला रूप होते थे अर्थात रत्नजटित छल्ले या फूल की कली जैसे लटकन होते थे। इनमें से सादा किस्म के कर्णफूलों का उपयोग पुरुषों द्वारा किया जाता था सिवाय विदेशियों के जिन्हें बिना कर्णफूल पहने दिखाया गया है।

बाजूबंदों को 'केयूर' तथा कंगनों को 'वलय' के रूप में जाना जाता था। ये स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा पहने जाते थे।

शिरोभूषण कई प्रकार के होते थे। पगड़ी और स्त्रियों के सिर पर पर्दों का रिवाज विलुप्त हो गया था। इनका स्थान रत्नजटित किरीट या 'मुकुट' ने ले लिया था अथवा उनके स्थान पर सिर की साधारण पट्टी या सिरबंद आ गए थे, जिन्हें 'ओपसा' कहते थे। ये फूलों के हार 'सृज' के साथ उपयोग में लाए जाते थे, जो निरंतर लोकप्रिय बने हुए थे। केशों को स्वर्ण अथवा रजत केश-पिनों से बांधा जाता था जिनके आकर्षक सिरे होते थे। पुरुष शिरोवस्त्र के रूप में पगड़ी 'मौली' ही पहनते थे। 'मेखला' अथवा कमरबंद विशेष रूप से रत्नजटित होते थे तथा इनके साथ केवल स्त्रियों द्वारा 'नूपुर' या पाजेब पहनी जाती थी। ये पूर्व काल की अपेक्षा सादा और हल्की होती थीं। मस्तक आभूषण जैसे 'सितारा' और 'बिंदी' जो मौर्य-शुंग काल में दिखाई देते हैं, इस काल में गायब हैं।

हाथ की अंगूठियां ठोस सोने की होती थीं। इनमें से कुछ अंगूठियां सादी तथा कुछ पर छोटी आकृतियां बनी होती थीं। हाथीदांत का कंघे, जड़ाऊ पिनें, केश-पिनें तथा डिब्बे बनाने के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता था।

सैन्य वेशभूषा

मौर्य-शुंग काल की सैन्य वर्दी से देशज कपड़ों पर विदेशी प्रभाव के आरंभिक चिह्नों का पता चलता है। कुषाणों के गांधार स्थल पर मारा (अपोलो) की सेना का एक सैनिक है जिसने भारतीय 'अंतरीय' तथा पगड़ी के साथ ग्रीको-रोमन शैली का बख्तर या कवच पहना हुआ है। कवच के लिए ऐसा कहा जाता है कि कवच को देशज धातु के तारों से निर्मित किया जाता था, जो संभवतया

लोहे के होते थे तथा जिन्हें 'जालका' नामक जाली में ढाला जाता था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि सैनिकों के कवच ढाले हुए तारों के स्थान पर पृष्ठ पर धातु की परत के होते थे। यह संभव है कि ऐसा सुधार सैनिकों के देशी उपकरणों पर विदेशी प्रभाव के कारण किया गया हो। उसी सेना का एक अन्य सैनिक पूर्ण विदेशी वस्त्र पहने हुए दिखाई देता है। उसने अपना कवच एक छोटे कुरते पर पहना हुआ है जो कुरते की किनार और आस्तीन पर दिखाई देता है तथा उसकी खुली टांगें, टांगों के कवच से ढकी हुई हैं। उसके सिर पर तिकोना कंटोपा है, जो विख्यात तिब्बती और खुरेजामियान नमदे की सफेद भूरी टोपियों की याद दिलाता है।

मध्य एशिया में खुरेज, बकत्रिया और सोगडीयानिया प्राचीन विश्व के अत्यंत महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र थे। बाद में फारस, यूनान और उसके बाद कुषाणों ने उनका स्थान लिया। मारा की इस सेना में तीसरे सैनिक ने नितांत भारतीय 'अंतरीय' पहन रखा है और उसका 'उत्तरीय' उसकी कमर पर बंधा हुआ है। तीनों सैनिकों के पास ढाल तथा विभिन्न प्रकार के उपकरण हैं। पैदल सैनिकों के लिए ऐसा कहा जाता है कि वे काफी लंबे तीरों के साथ छह फुट लंबे धनुष का उपयोग करते थे तथा उनकी लंबी ढालें बैलों की खुली खालों से निर्मित होती थीं और उनकी चौड़ी तलवारें तीन हाथ (लगभग 20 इंच) लंबी होती थीं। कुछ सैनिक धनुष के स्थान पर बरछे लेकर चलते थे। घुड़सवार छोटी ढालों और प्रत्येक दो बल्लमों के साथ सज्जित होते थे किंतु बिना काठी के सवारी करते थे।

धार्मिक व्यक्ति

ब्राह्मण साधु अथवा तपस्वी पेड़ों की छाल अथवा पशुओं की खाल के कपड़े पहनते थे तथा जंगल अथवा अन्य एकांत स्थानों पर अतिसंयमी जीवन का निर्वाह करते थे। भिक्षुओं के वस्त्र पहले के जैसे ही पीले अथवा लाल रंग के होते थे और उनमें पूर्ववत अंतर्वस्क', 'उत्तरासंग', 'समघटी' तथा कुशालक होते थे जिनके साथ एक बक्कल की पेटी अथवा 'समकक्षिका' होती थी। तब उनके ये वस्त्र संभवतया धनाढ्य व्यापारियों द्वारा विहार को दान दिए जाते थे, तथा ये वस्त्र चिथड़ों के नहीं होते थे। बुद्ध की आकृतियों में शारीरिक तथा आध्यात्मिक पूर्णता का चिह्न सिर पर प्रक्षेप अथवा 'उष्णीश' है जो ब्राह्मणों द्वारा रखी जाने वाली सिर की जटा की गांठ से विकसित हुआ है। एक अन्य प्रतीक 'उर्ण' अथवा भौहों के

बीच बालों का गुच्छा है जो तीसरी आंख का प्रतीक है। कान की बढ़ी हुई लौ भी पूर्णता का एक चिह्न है।

वस्त्र उद्योग और रंगाई-छपाई

चीन से सर्वप्रथम सीधा व्यापार प्राचीन रेशम-मार्ग के माध्यम से स्थापित किया गया था। भारतीय व्यापारी चीनी तुर्किस्तान में जा बसे थे। यह इलाका कुषाण सम्राट कनिष्क ने अपने राज्य में मिला लिया था। इसमें काशगर, खतून और यारकंद सम्मिलित थे। चीन के लिए बौद्ध शिष्टमंडल भी भेजे जाते थे। रोम में अगस्टस ने भारत से व्यापार को प्रोत्साहित किया था तथा वहां के निर्यात में वृद्धि होने के फलस्वरूप व्यापारी वर्ग में इससे समृद्धि आई थी। उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में मोटे सूत तथा ऊन का उपयोग घुड़सवारों, शिकारियों, विदेशियों तथा द्वारपालों के कुरते, बिरजिस-पतलून बनाने के लिए किया जाता था। मध्य भारत में हल्के वजन के सूत 'तुला फांसी' के वस्त्र बनाए जाते थे। देशज एवं विदेशी रेशम बहुतायत से उपलब्ध था किंतु महंगा बहुत था।

'अंतरीय' बहुत कम सजे हुए होते थे और यदि उन्हें सजाया जाता था, तो उन पर कशीदाकारी की जाती थी अथवा वे बुने हुए होते थे या चौखाने की छोटी गोल बिंदियों के डिजाइनों में तिरछे छपे हुए होते थे। धनाढ्य स्त्रियों की पगड़ियां तिरछी धारियों की होती थीं जिनकी प्रत्येक तीसरी कतार मोतियों से जड़ी होती थी। ऐसी रत्नजटित सामग्री का उपयोग बिस्तर की चादर तथा बैठने की सीट के आवरण के लिए भी किया जाता था। अनेक अन्य ज्यामितिक रूप के चौखाने, धारीदार तथा तिकोने कपड़े भी छापे तथा बुने जाते थे। केवल साहित्यिक स्रोतों से ही हमें पूर्वकाल के रंगाई-छपाई के वस्त्र उद्योग का ज्ञान होता है। बारहवीं अथवा तेरहवीं शताब्दी में भारत में वास्तव में कपड़ा बनाए जाने का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। किंतु रेशम-मार्ग पर कब्रिस्तानों में अनेक प्रकार के वस्त्र बरामद हुए हैं जिनके काल का संबंध प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तथा दूसरी शताब्दी ईसवी (चीन में हेन का काल) के मध्य से हो सकता है। इस साक्ष्य के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि इस मार्ग से उपलब्ध चीन मूल की रंगाई-छपाई के नमूने यह प्रकट करते हैं कि चीन की रंगाई-छपाई ने भारत के बाजार में प्रवेश कर लिया था। अतएव यह भी संभव है कि इस रंगाई-छपाई के कई नमूने और रंग समान रहे होंगे अथवा देशज वस्त्र उनसे प्रभावित

हुए होंगे। किंतु जैसा कि हम जानते हैं, यह एक तथ्य है कि सुंदर अल्ट्रामरीन और लाजवर्द व्यापार मार्गों से मध्य एशिया में बदखशां स्थित प्रसिद्ध खानों से भेजे जाते थे। इसके अतिरिक्त पूर्वकालिक पर्याप्त साहित्यिक साक्ष्य परिष्कृत भारतीय वस्त्र उद्योग के परिचायक हैं।

प्राचीन रेशम-मार्ग से बरामद वस्त्रों की संकलित सूची में, बरामद वस्त्रों के रंग इस प्रकार हैं : चटकीला नीला, चमकीला नीला, हल्का नीला, गहरा नीला, ताम्रवर्ण, हल्का गोल्ड-बफ, कांस्य-भूरा, गहरा भूरा, हल्का भूरा, नसवार-भूरा, मेहंदिया हरा, हरा, गहरा कांस्य-हरा, किरमिजी, गुलाबी, किरमिजी-भूरा, चटकीला लाल, पीला, पीला-भूरा, पीला-हरा, चटकीला गहरा पीला-भूरा। यह सभी रंगाई-छपाई के विभिन्न रंग तथा उनका मिश्रण हैं जो तत्कालीन भारत में भी उपलब्ध थे।

शैली

गांधार कला का जो विकसित रूप बाद में बना तथा मथुरा की कला में, कुषाण प्रभाव को महसूस किया जा सकता है जिसमें भरहुत और सांची के वृहद् प्रभाव को बनाए रखते हुए पहले की अपेक्षा मूर्तिकला में अधिक परिष्कृत नक्काशी तथा भड़कीली व कामुक प्रतिमाएं हैं, जो इससे पहले नहीं देखी गई थीं। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि 'त्रिभग' मुद्रा में गणिकाओं की तराशी हुई देह के उत्तेजित प्रदर्शन तथा पुष्प जैसी कोमल चेष्टाओं ने विदेशियों को भारतीय अनुभव के एक ऐसे पहलू से अवगत कराया जिसने उनकी कल्पना को उत्तेजित किया था।

तथापि इसी काल में अफगानिस्तान में किंजिल में दीवार पर ऐसी चित्रकारी है जिसमें रेखाचित्र की तार जैसी रेखा में लाजवर्द के प्रावल्य के साफ चटकीले चित्ताकर्षक निश्चल तथा जमे हुए रंग दिखाई देते हैं, जो मथुरा में पाई गई मूर्तियों के चित्रों की रूप-छवि के समरूप हैं। उत्तरोल्लिखित में कुषाण सम्राटों का औपचारिक स्थिर चित्रण है जिसमें उनके द्वारा पहनी जाने वाली विभिन्न प्रकार की वेशभूषाओं का पूर्ण विस्तृत विवरण है। कुषाण मूलतया कला प्रेमी नहीं थे। साइथियन मूल के लोगों की अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम धातु कला का प्रदर्शन था जिसके अंतर्गत वे घोड़े की नालों, शिकार के साज-सामान तथा अलंकृत पट्टिकाओं का निर्माण करते थे जिसकी सिलाई वे अपनी वेशभूषाओं पर किया करते थे। किंतु भारत में प्रवेश के पहले अनेक वर्षों तक वे बकतरिया में रहे

थे और यहां उन्होंने अपने को उस भूमिका के लिए तैयार किया। उसका निर्वाह कला के महान संरक्षकों के रूप में किया जिसे गांधार कला के विकास तथा मथुरा की देशज कला में देखा जा सकता है। तत्पश्चात ये दोनों ही शैलियां गुप्तकालीन कला के पुनर्जागरण के सृजन में विलीन हो गईं।



35. दरबारी महिला
(बेग्राम)

अंतरीय
कच्छा शैली में ओछा पहना जाने वाला; उसका टांगों के बीच में होकर निकलने वाला सिरा पीछे की ओर खोंसा हुआ है; दूसरा टुकड़ा जांघों के मध्य तक सामने बांधा हुआ है जिसका एक सिरा छोटे छल्ले की झालर में मध्य में बांधा हुआ है।

कायबंध
ये दो प्रकार के होते हैं : एक तो चौड़ा कमरबंद जो टखनों के दोनों ओर फर्श तक कूल्हों के दोनों तरफ लटकन के साथ गांठ से बंधा लटका होता है; दूसरा 'कक्षबंध' मोटा रत्नजटित कायबंध जो टेढ़ा पहना जाता है तथा जिसमें बाएं कूल्हे पर बकसुआ लगा होता है।

मेखला
पंच-लड़ी मोती या रत्नजटित कूल्हे की बेल्ट; यह अंतरीय और कपड़े के कायबंध को यथा-स्थान थामे रखती है।

हार
मोतियों का हार, संभवतया धागे अथवा तार में बांधा हुआ तथा वक्ष के मध्य में पहना जाने वाला

कंठ
रत्नों का छोटा हार, मध्य में लटकन तथा छल्लों की चैन

केयूर
सोने अथवा चांदी में छल्ले की डिजाइन के सादा बाजूबंद

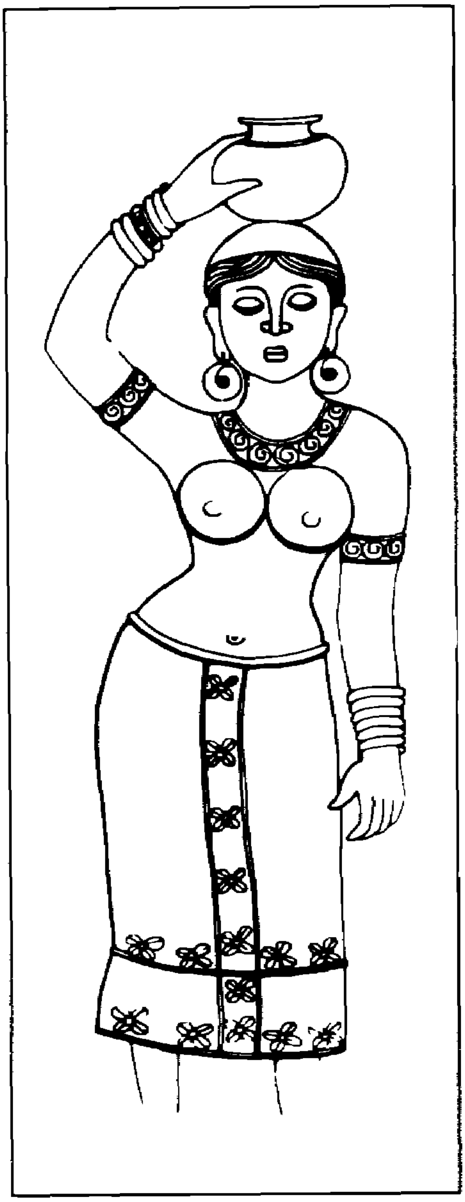
वलय
दो प्रकार के कंगन : मध्य वाले में पहुंची जैसी मुद्रिकाओं की कतार; दोनों ओर मोटे ठोस कंगन

कुंडल
चौकोर कर्णफूल फूल जैसी घुंडी से सज्जित तथा मोती लटके हुए

नूपुर
अलंकृत डिजाइन में चौड़े घुंघरुओं की पाजेब

मुकुट
सिर पर रत्नजटित मुकुट तथा एक सिरबंद

केश-विन्यास
मस्तक पर संतुलित घुंघराले बाल, केश एक छल्ले की गांठ में बंधे हुए तथा पीछे की ओर चोटी के रूप में बाहर खड़े हुए



36. ग्वालिन
(मथुरा)

घाघरी
घुटनों तक लंबी साधारण घाघरी जो मध्य में सामने की पट्टी पर सिली हुई, इसमें या तो सीधी सिलाई होती है या एक नाड़े की पट्टी लिपटी होती है, यह किसी स्त्री के सिले हुए अधोवस्त्र का पूर्वकालिक उदाहरण है

कंठ
अलंकृत डिजाइन का छोटा चपटा हार

केयूर
कंठ जैसे अलंकृत डिजाइन के ही बाजूबंद

वलय
सादी गोल चूड़ियां

कुंडल
सादा छल्ले जैसा कर्णफूल

स्त्री अपनी मटकी संभवतया बेंत की बनी सिर की ईडी पर रखती है जो एक औंधी टोकरी जैसी होती है।



37. यक्षि : महिला द्वारपाल

(गांधार)

अंतरीय

लहंगा शैली में पहना जाने वाला, साधारण रूप से चारों ओर लपेटा हुआ तथा बाईं ओर बांधा हुआ

उत्तरीय

आकस्मिक रूप से कंधों पर डाला हुआ

कुरता

सामने से खुला हुआ, गले में बटन के माध्यम से पहना हुआ; लंबी सलवटों वाली आस्तीनें, सलवटों पर रत्नजटित बंद अथवा बटन; फ्रॉक की लंबाई का कसा हुआ कुरता

मेखला

बकसुए के साथ चौलड़ा कमरबंद जिसके मध्य में सामने सजी हुई फूल-पत्तियां

हार

वक्ष के मध्य में पहना जाने वाला मोतियों का एक लंबा हार तथा लटकन के साथ एक छोटा हार

कुंडल

गोल छल्लेदार बड़े कर्णफूल

सिरबंद

पुष्पमाला अथवा मध्य में पुष्प लगी पगड़ी, जिसे केशों की चोटी के चारों ओर पहना जाता है।

सितारा

मस्तक पर पहना जाने वाला गोलाकार टीका

विदेशी एवं देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप



28. महिला पहरेदार
(गांधार)

कुरता
कुषाण के रूप का लंबी सलवटों की आस्तीनों वाला

अंतरीय
'चलन' भी हो सकता है—कुषाण ढीली धोती

कायबंध
मुड़ी हुई कमरपेटी

हार
गले का लंबा हार, जो वक्ष के मध्य में पहना जाता है

वलय
दाएं हाथ में दिखाई देती तीन चूड़ियां

नूपुर
भारी घुंघरुओं वाले पाजेब

केश-विन्यास
सामने के केश तीन भागों में विभक्त, मध्य बीच के केश गुच्छेदार, अन्य दोनों ओर के केश नीचे की ओर कंघी किए हुए, उन पर लटके हुए फुंदने

वह अपने हाथ में एक लंबा भाला तथा नक्काशी की हुई गोल ढाल लेकर चलती है, विदेशी एवं देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप



39. रेखाकृति
(मथुरा)

अंतरीय
साड़ी जैसा, सामने बंधा हुआ जबकि एक सिरा टांगों के बीच से निकलता, पीछे की ओर चुन्नटदार खोंसा हुआ, दूसरा भाग आंशिक रूप से चुन्नटदार तथा सामने खोंसा हुआ व तत्पश्चात चारों ओर लपेटा हुआ बाएं कंधे पर पहना हुआ

कुरता
कुषाण की शैली का लंबी सलवटों की आस्तीनों वाला जो या तो अंतरीय में खोंसा हुआ अथवा कमर पर ओछा पहना हुआ

वलय
प्रत्येक कलाई पर एक चूड़ी

नूपुर
हल्के घुंघरुओं वाले पाजेब

कुंडल
मुड़े हुए अथवा झूलते हुए चक्रिका कर्णफूल

केश-विन्यास
बीच की मांग में एक ओर लंबे केशों का छल्ला

विदेशी और देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप। कच्छा शैली की प्रारंभिक काल की यह साड़ी आज भी महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत के कुछ भागों में पहनी जाती है।



40. महिला
(गांधार)

अंतरीय
साड़ी जैसा कच्छा शैली में पहना जाने वाला, दूसरा सिरा शरीर को ढकता हुआ बाएं कंधे के ऊपर से निकलता

कायबंध
साधारण कमरबंद, कई भागों में मुड़ा हुआ

उत्तरीय
पीठ तथा कंधों के ऊपर पहना हुआ, बायां भाग कमर के पास ढीला खोंसा हुआ

वलय
दाईं कलाई पर चार चूड़ियां

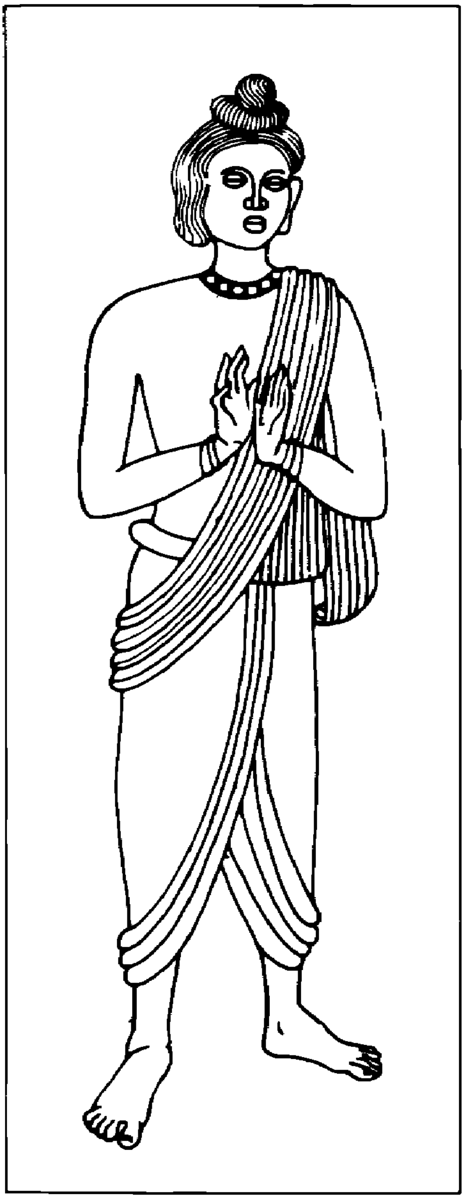
हार
वक्ष के मध्य में पहना जाने वाला मोतियों का हार

कुंडल
चक्रिका जैसे साधारण कर्णफूल

नूपुर
टखनों पर भारी दोहरे घुंघरुओं वाले

केश-विन्यास
फूल-पत्तियों की माला

विदेशी एवं देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप



41. रेखाकृति
(गांधार)

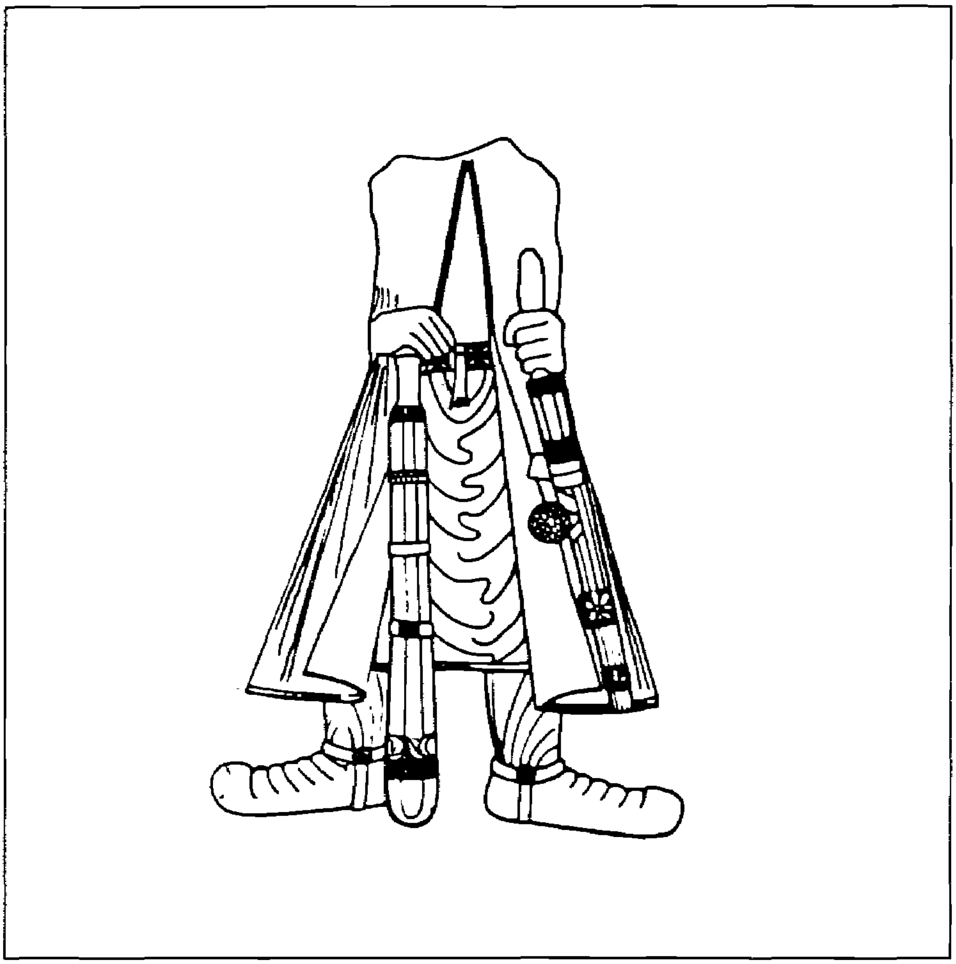
अंतरीय
कच्छा शैली, केवल चुन्नटदार सिरा, जो छोटा करके पीछे की ओर लटका हुआ है।

उत्तरीय
पीछे तिरछा कंधों के ऊपर सीधे हाथ के नीचे से पहना हुआ, फिर वक्ष पर तिरछा डालकर पुनः बाएं कंधे पर डाला हुआ

कंठा
छोटा हार

केश-विन्यास
सिर के मध्य में दोहरी गांठ

विशुद्ध देशज शैली



42. सम्राट कनिष्क
(मथुरा)

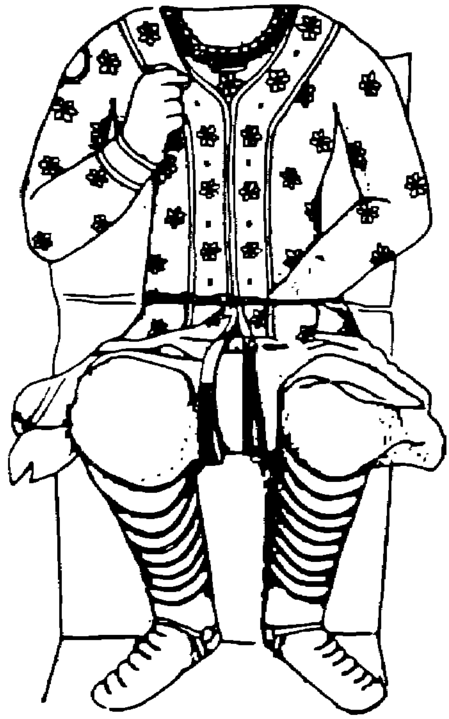
कुरता
पिंडली तक लंबा मोटी दुलाई का अस्तर, अधोभाग की किनार पर वेणी

चोगा
कुरते से अपेक्षाकृत लंबा कोट, सामने मध्य में खुला पहना जाने वाला तथा लंबी समेटी हुई आस्तीनें

पेटी
धातु की अलंकृत पट्टिका की

बूट
गद्दीदार, टखनों के चारों ओर तस्मे तथा बूट के नीचे अलंकृत बकसुआ जो इसे एक साथ रखता है; ये बूट या तो पिंडली तक लंबे होते हैं अथवा ढीली-ढाली पतलून चलन के पाएंचे छोटे बूटों में डाले हुए हैं।

यह पहनावा साका-पारथियन विदेशी मूल का है। उसने अपने हाथ में सजावटी म्यान में दो तलवारें थाम रखी हैं।



43. कुषाण सम्राट
(मथुरा)

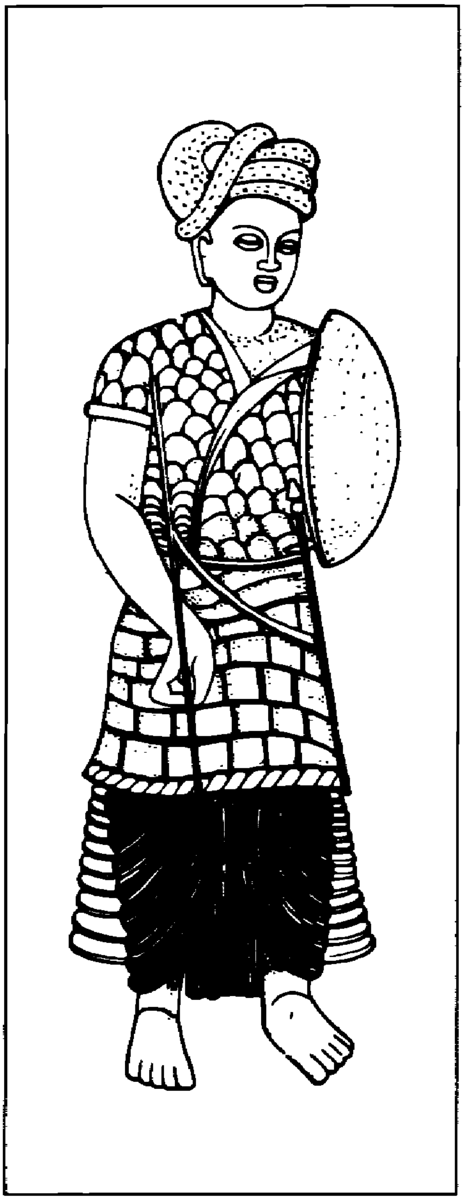
चोगा
पिंडली तक लंबा तथा सामने से मध्य में खुले हुए भाग की किनार, मगजी की गोट तथा लंबी आस्तीनों की किनार (संभवतया झालरदार) पर पूर्णतया कशीदाकारी की हुई; कोट की सामग्री में लघु गुच्छे तथा एक वी-गला होता है तथा सीधी आस्तीन में गोल मोटिफ है।

कुरता
'कुरते' जैसा अधोवस्त्र जो गले पर दिखाई देता है।

चलन
ढीली-ढाली पतलून जो पिंडली तक लंबे गद्देदार बूटों में अंदर डाली हुई; मध्य में नीचे से ऊपर तक लता के स्वरूप की एक चौड़ी पट्टी (जो रेखाचित्र में दिखाई नहीं दे रही है); टखनों और पिंडलियों पर तसमे

कंठा
लटकन के साथ छोटा हार

साइथिक मूल की विशुद्ध विदेशी वेशभूषा



44. सैनिक
(गांधार)

अंतरीय
कच्छा शैली में पहना जाने वाला

कवच
स्केल अथवा समांतर षट्फलक के स्वरूप की पट्टिका का बना जंजीर का कवच, दोनों डोरी से साथ बंधे (जापानी अथवा तिब्बतियन कवच जैसे); आस्तीनों का सिरा, कमर और गोट एक डोरी से मजबूत किए जाते हैं; घाघरी का भाग समकोणीय समानांतर कतारों की पट्टिकाओं से बनाया जाता है।

मौली
पगड़ी मुड़े हुए गोल कपड़े की बनाई जाती है ।

उपकरण
गोलाकार ढाल और भाला

यह विदेशी तथा देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप है। कवच ग्रीको-रोमन है।



45. सैनिक
(गांधार)

अंतरीय
पिंडली तक लंबा पारदर्शी तथा 'लहंगा' शैली में पहना जाने वाला

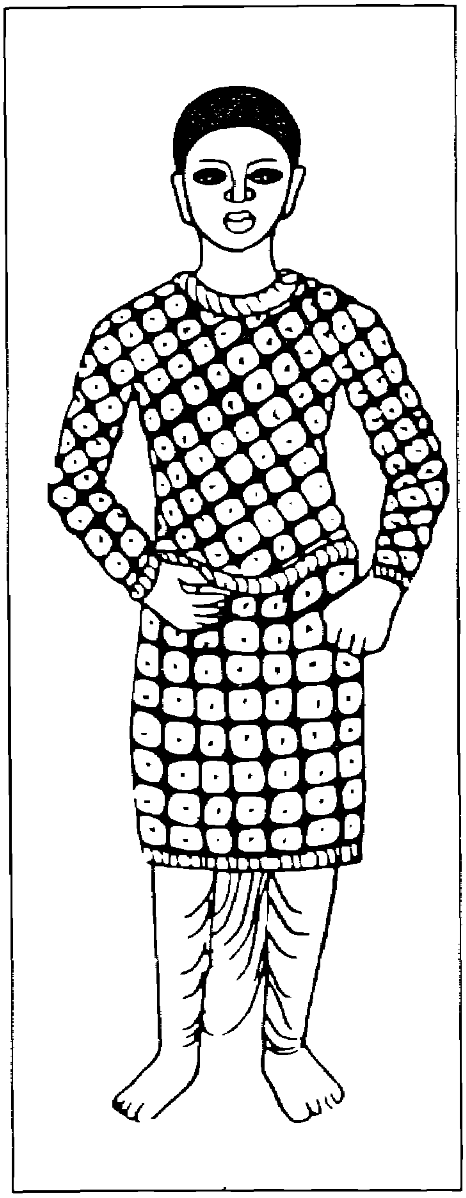
कवच
'वी' गला तथा ओछी आस्तीनों के साथ स्केल कवच; लहंगे का भाग चौकोर सिले टुकड़ों के डिजाइन का तथा मध्य जंघा तक लंबा है।

कुरता
किनार तथा आस्तीनों पर दिखाई देता

उपकरण
तलवार के पट्टे के साथ चपटी, छोटी तलवार; वक्ष के आर-पार तसमे, संभवतया तरकश के लिए, गढ़े हुए डिजाइन की गोल ढाल

मौली
अनेक बार बांधी तथा सीधी ओर बंधी हुई पगड़ी

विदेशी एवं देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप



46. पहरेदार
(गांधार)

अंतरीय
'कच्छा' शैली में टखनों तक पहना जाने वाला

कुरता
घुटनों तक लंबा, पूर्णतया कंबलित वेशभूषा जिसमें कमर, गले और किनार पर मोटी नाड़ जैसी डोरी है।

ऊपर की ऊनी वेशभूषा आज भी शीतऋतु में उत्तर भारत में पहनी जाती है। विदेशी एवं देशज वेशभूषा का मिला-जुला रूप।



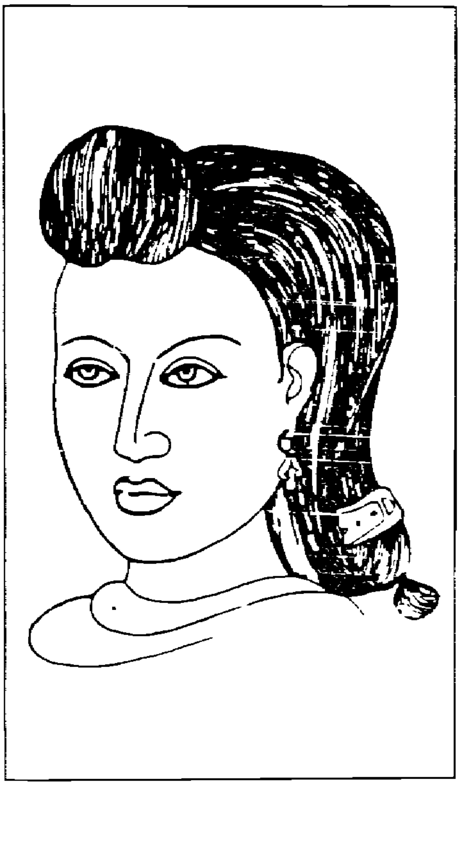
47. महिला दरबारी परिचारिका
(मथुरा)

इस साधारण केश-विन्यास में केशों के मध्य में मांग निकालकर, केशों को सीधी ओर नीचे खींचकर दाएं कंधे पर कुंडल के जैसे लटका लिया जाता है।

48 दरबारी महिला
(मथुरा)

केशों की चोटी की गांठ मांग की रेखा को ढक लेती है; केशों को एक गेंद के समान रूप दिया जाता है; शेष बालों को पीछे लेकर 'लूप' समान घुमा कर एक क्लिप अथवा जड़ाऊ पिन द्वारा यथास्थान रखा जाता है।

इस केश-विन्यास पर जो इस काल में साधारण रूप से देखा जाता है, विदेशी प्रभाव झलकता है, क्योंकि इससे पूर्व के काल में यह दिखाई नहीं देता, विशेष रूप से सामने मध्य में गुच्छेदार बाल।





49. दरबारी महिला

(बेग्राम)

जैसा रेखाचित्र 48 में दिखाया गया है, केश गुच्छे के रूप में बनाए जाते हैं, मुख पर केश घुंघराले बने होते हैं; शेष बालों को गांठ में बांध लिया जाता है जिसे पीछे मध्य में सीधा खड़ा रखा जाता है; मुड़ी हुई पगड़ी को साधारण रूप से बालों के चारों ओर लपेटा गया है।

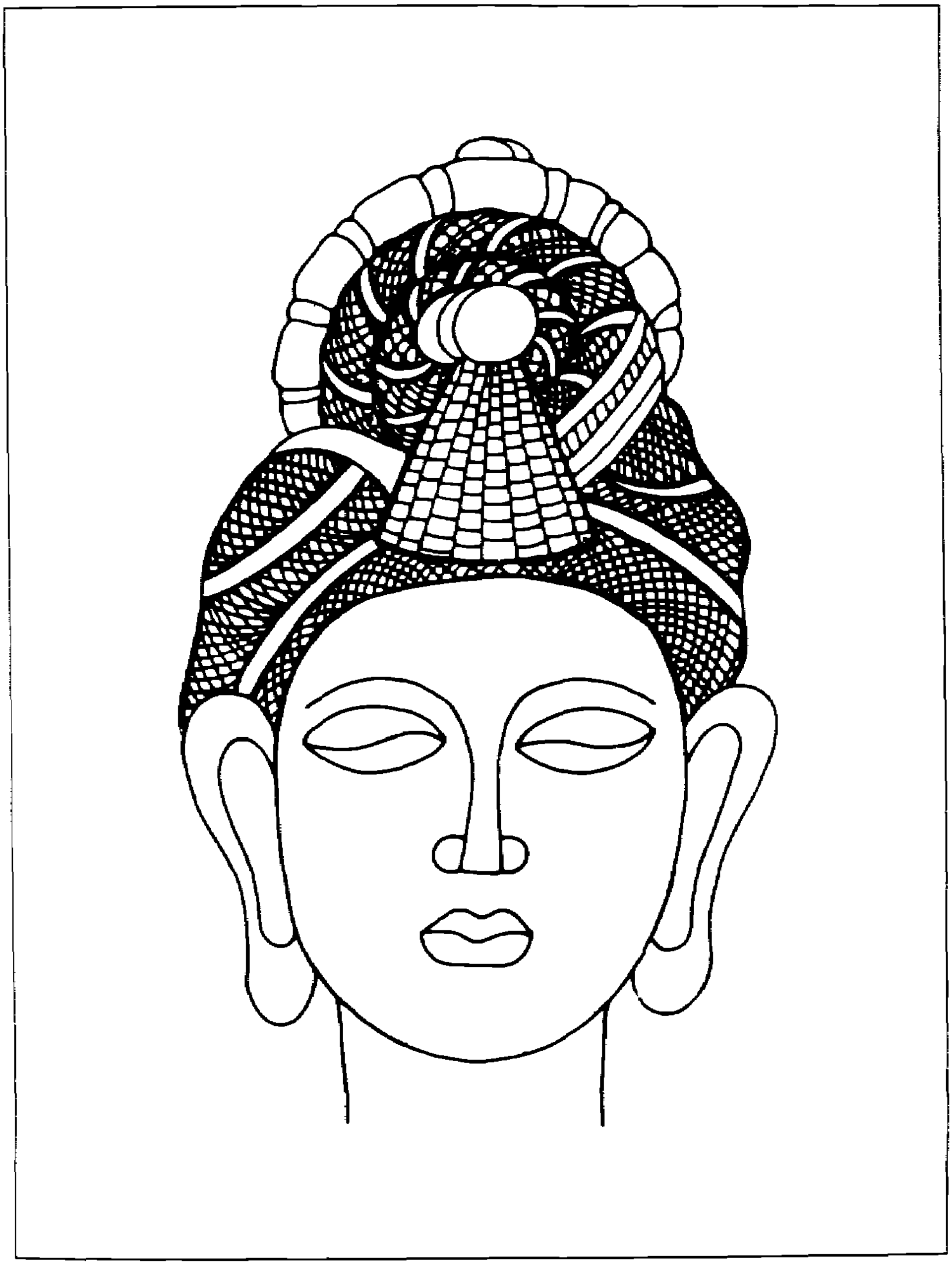


50. दरबारी

(गांधार)

मौली

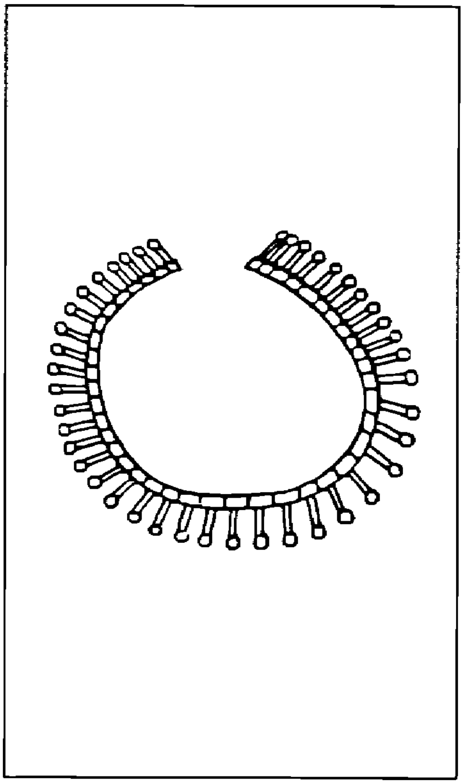
पूर्व काल की अपेक्षा पगड़ी साधारण रूप में पहनी जाती है: कपड़े के साथ केशों को गूंथा नहीं जाता; सामने कुछ बकसुओं से सजाई हुई; ऊपर एक अलंकृत गोला है जिसमें से मोतियों की लड़ी निकाली जाती है जिसे दोनों ओर के भागों से जोड़ दिया जाता है।



51 **रेखाकृति**
(मथुरा)

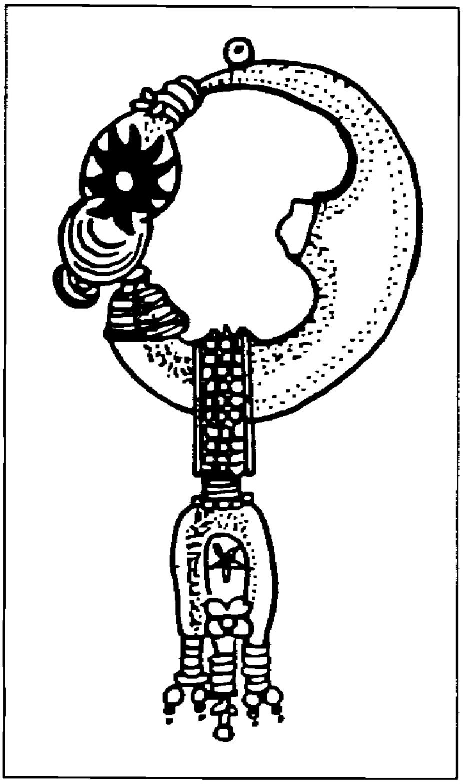
मौली

मूल्यवान सामग्री की पगड़ी जो मध्य से घुमावदार मुड़े हुए कपड़े के गोलों पर खड़ी होती है तथा चुन्नटदार सिरा अलंकृत पंखे के रूप का दिखाई देता है; इसे पगड़ी का रूप देने के लिए एक बंद का आड़े-तिरछे उपयोग किया जाता है।



52. हार
(तक्षिला)

कंठ
जुड़ी हुई नोकों के डिजाइन का सोने का छोटा हार

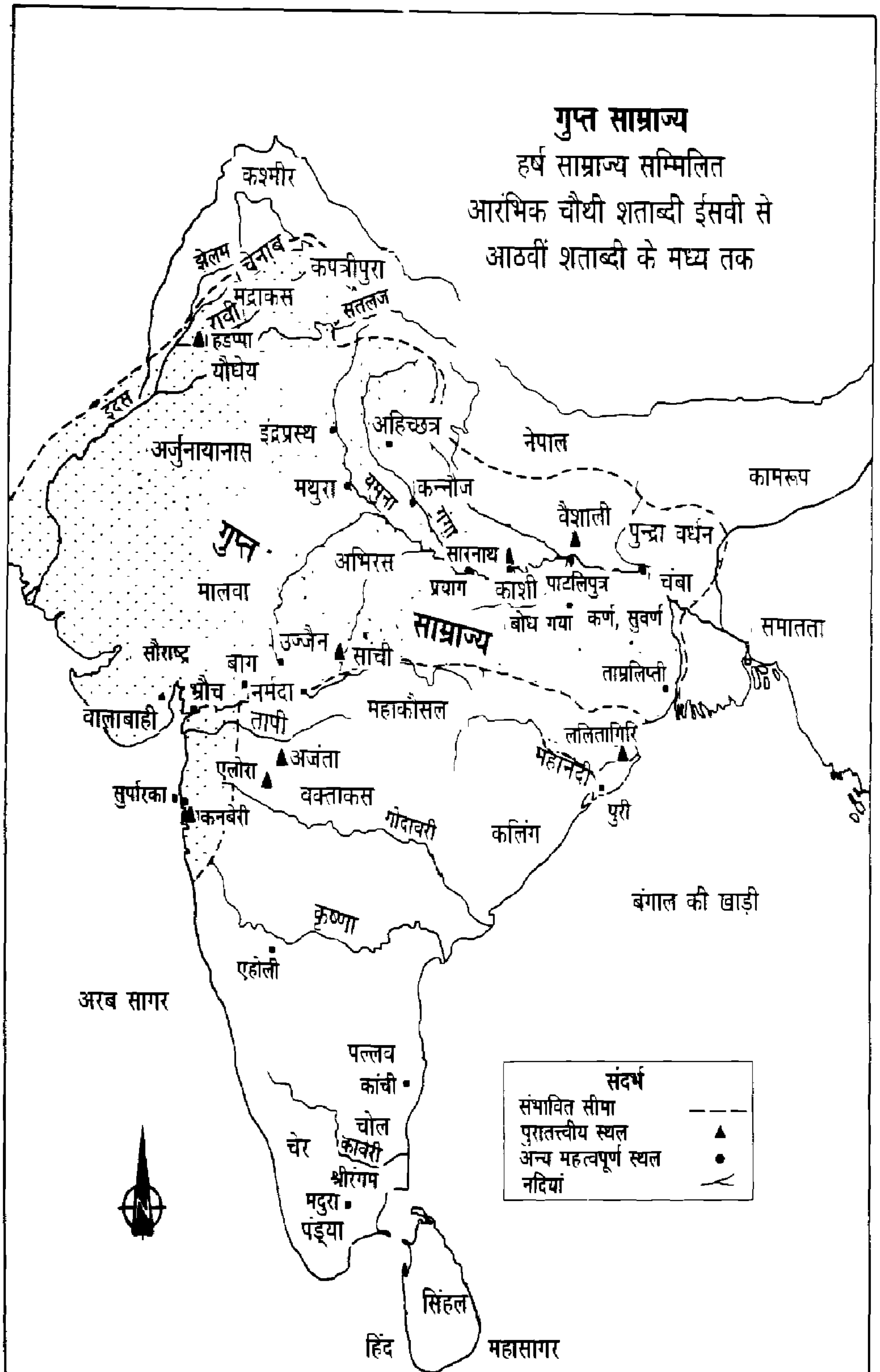


53. कर्णफूल
(तक्षिला)

कुंडल
सोने का 'जलोका तथा लटकन' के रूप का पेच अथवा जलोका स्वयं कान से जुड़ जाता है तथा कणिकायन के साथ लटकन की कलिका को एक चल पेच के माध्यम से अलग किया जाता है।

गुप्त काल

(प्रारंभिक चौथी से मध्य आठवीं शताब्दी ईसवी)


गुप्त साम्राज्य
हर्ष साम्राज्य सम्मिलित
आरंभिक चौथी शताब्दी ईसवी से
आठवीं शताब्दी के मध्य तक
कश्मीर
झेलम
चेनाब
कपत्रीपुरा
मद्राकस
रावी
सतलज
हड़प्पा
यौधेय
इंदस
इंद्रप्रस्थ
अहिच्छत्र
नेपाल
अर्जुनायानास
मथुरा
यमुना
कन्नौज
गंगा
कामरूप
वैशाली
पुन्द्रा वर्धन
गुप्त
अभिरस
सारनाथ
मालवा
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
चंबा
बोध गया
कर्ण, सुवर्ण
साम्राज्य
उज्जैन
सौराष्ट्र
बाग
सांची
समातता
ताम्रलिप्ती
भ्रौच
नर्मदा
वालाबाही
ताप्ती
महाकौसल
ललितागिरि
अजंता
महानदी
एलोरा
वक्ताकस
सुर्पारका
कनबेरी
गोदावरी
कलिंग
पुरी
बंगाल की खाड़ी
कृष्णा
एहोली
अरब सागर
पल्लव
कांची
चोल
चेर
कावेरी
श्रीरंगम
मदुरा
पंड्या
सिंहल
हिंद
महासागर
संदर्भ
संभावित सीमा
पुरातत्त्वीय स्थल
अन्य महत्वपूर्ण स्थल
नदियां

गुप्त काल

(प्रारंभिक चौथी से मध्य आठवीं शताब्दी ईसवी)

वेशभूषाओं के महत्व के मुख्य पुरातत्वीय स्थल

- अजंता के भित्तिचित्र
- बाघ के भितिचित्र
- अहिच्छत्र (रोहिलखंड)

इतिहास और सामाजिक जीवन

गुप्त साम्राज्य उत्तर भारत में चौथी शताब्दी ई. में स्थापित किया गया था जबकि तृतीय शताब्दी के मध्य में लंबे समय तक चली अव्यवस्था के पश्चात कुषाण साम्राज्य समाप्त हो गया था। इस अंतरिम काल में अनेक नए व्यक्तित्वों तथा राज्यों का उदय हुआ जिनके संबंध में बहुत कम ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध हैं। गुप्त साम्राज्य की स्थापना के पश्चात ही लगभग संपूर्ण उत्तर भारत में एक बार पुनः एकता और शांति की स्थापना हुई थी।

गुप्त साम्राज्य का कार्यकाल दो शताब्दियों से भी अधिक चला तथा यह काफी विशाल साम्राज्य था। यह उत्तर भारत के एक बड़े भू-भाग में तथा पूर्व में बल्ख तक फैला हुआ था। पश्चिम में गुप्तों ने विदेशी आक्रमणकारियों को पूर्णतया परास्त कर दिया था जिन्होंने गुजरात में 200 वर्ष से भी अधिक तक राज्य किया था। 'स्वर्ण युग' तथा 'शास्त्रीय काल' कहलाने वाले गुप्त युग में सभी कलाओं में संतुलन और सामंजस्य था तथा वहां का प्रशासन-तंत्र दक्ष था।

फाहियान ने, जो एक चीनी भिक्षु था, उस काल में इस देश की यात्रा की थी तथा उसने अपनी यात्राओं का एक वृतांत भी लिखा जिसमें उसने उस काल में भारत में शांति, गंभीर अपराधों की विरलता और प्रशासन की परोपकारिता का उल्लेख किया है। अस्पृश्यों तथा निम्न श्रेणी की जातियों के सिवाय अधिकांश भारतीय शाकाहारी थे। हिंदुत्व समस्त ओर फैला हुआ था यद्यपि बौद्ध धर्म भी फल-फूल

रहा था।

कालक्रमानुसार गुप्त काल में कनौज के हर्ष का शासन काल (606-647 ई.) भी सम्मिलित है जिसने श्वेत ह्यूनों के आक्रमणों के पश्चात साम्राज्य का गौरव पुनरुज्जीवित किया था। हर्ष और गुप्त, दोनों ही कभी दक्षिण पर विजय प्राप्त नहीं कर सके थे जहां पल्लवों और चालुक्यों ने सातवाहनों से शासन प्राप्त किया था। कुषाणों के समय में पश्चिमी संसार के रोमन साम्राज्य के प्रभुत्व के कारण उसका अत्यधिक प्रभाव था। किंतु अब पश्चातवर्ती के विघटन के परिणामस्वरूप भारत अकेला पड़ गया था तथा विशुद्ध भारतीय आदर्शों का सुदूर पूर्व तथा दक्षिण एशिया में प्रसार भी किया जा रहा था जहां व्यापार तथा धर्म के माध्यम से अधिक संपर्क स्थापित किए गए थे।

दकन में गुप्तों ने नहीं बल्कि वकाटकाओं ने पांचवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध से सातवीं शताब्दी तक शासन किया तथा उनके पश्चात चालुक्य सम्राट पुलाकिसिन-द्वितीय (609-642 ई.) शासन में आया। यह क्षेत्र तथा कालखंड गुप्त काल की वेशभूषा के खंड के अधीन सम्मिलित किया गया है क्योंकि उस समय तक गुप्त स्तरीय वेशभूषा दकन में तथा उत्तर भारत के अधिकांश भाग में प्रवेश कर चुकी थी।

विगत कालों में वेशभूषा का साक्ष्य मुख्य रूप से मूर्तिकला पर आधारित था किंतु इस काल में भित्तिचित्र समकालीन जीवन की विविधता तथा पहनावे को दर्शाते हैं।

वेशभूषा : पुरुष

किसी भी पूर्व युग की तुलना में इस काल में सिली हुई वेशभूषा को विशेष रूप से प्राथमिकता दी जाती थी तथा उत्तर भारत व दकन के लिए वेशभूषा का स्पष्ट निर्धारण किया जाना प्रारंभ हो गया था जिसके फलस्वरूप उसके बाद वेशभूषाओं की प्राथमिकता निश्चित की जाने लगी थी जिसे हम आज भी देखते हैं। कुषाण काल में सिली हुई वेशभूषा को एक प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी तथा उसे राजत्व के साथ जोड़ा जाता था क्योंकि कुषाण राजा तथा उनके वंशज सौ वर्ष से भी अधिक से भारत के एक बड़े भू-भाग पर तथा मध्य एशिया में राज्य कर रहे थे। गुप्त राजाओं ने ऐसी राजसी पोशाक अपनाने के महत्व को समझ लिया था जिसकी राजत्व के साथ पारंपरिक पहचान स्थापित हो गई हो। उन राजाओं को गुप्तकालीन सिक्कों पर पूर्ण कुषाण पोशाक में दिखाया गया है अर्थात वे कोट, पतलून तथा

बूट पहने हुए सिक्कों पर दिखाई देते हैं। तथापि वे औपचारिक अवसरों पर देशज 'अंतरीय', 'उत्तरीय' और 'कायबंध' पहनते थे।

कटी और सिली हुई वेशभूषा के अनेक प्रतिरूप विशेष रूप से दरबार में फैशन बन गए थे। ये वेशभूषाएं भारतीयों के लिए एकदम विदेशी नहीं थीं। इसके साथ ही धीरे-धीरे वेशभूषाओं के प्रतिरूपों में परिवर्तन आ रहा था तथा पूर्व समय के देशज कंचुक से, जो पूर्व समय से ही हरम के अभिभावकों तथा परिचारकों के नाम से जुड़ गया था, संभवतया जरी के कुरतों के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त हुई जिसकी लंबी अथवा छोटी आस्तीनें हुआ करती थीं और जिन्हें मंत्रीगण, चौकीदार, द्वारपाल तथा दरबार के परिचारक पहना करते थे। प्रायः इसका साधारण रूप भी दिखाई देता है जो एक पिंडली तक लंबा सफेद कुरता होता था जिसे कंचुकी के साथ पहना जाता था तथा जिसके साथ एक 'चादर' इस पोशाक की शोभा बढ़ा देती थी। अधोवस्त्र प्रायः 'अंतरीय' होता था जिसके साथ कभी-कभी 'कंचुक' पहना जाता था और जिसे कमीज के जैसे अंदर डाला जाता था। 'कायबंध' का उपयोग वेशभूषा को यथास्थान बनाए रखने के लिए किया जाता था। 'उष्णीश' (पगड़ी) का चलन धीरे-धीरे पुराना पड़ गया था तथा इसका उपयोग मुख्य रूप से कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों, मंत्रीगण तथा अन्य अधिकारियों तक ही सीमित था।

राजदरबारों में विदेशियों का दिखाई देना सामान्य बात थी क्योंकि इस काल में भारत तथा ईरान के मध्य व्यापार तथा वाणिज्यिक व्यवहार शिखर पर था। फारस के लहराते फीते की सजावट के समृद्ध फैशन का प्रभाव, जो फारस के खुसरो-द्वितीय (600 ई.) के दरबार में प्रचलित था, भारतीय कला पर स्पष्ट दिखाई देता है।

उत्तर भारत में, जहां जलवायु संबंधी स्थितियां अधिक अनुकूल थीं, सिली हुई वेशभूषाओं पर अधिक बल दिया जाता था किंतु दक्षिण में, जैसा कि आज भी स्पष्ट है, देशज 'अंतरीय', 'उत्तरीय' तथा 'कायबंध' का अपना अलग स्थान था। यह आश्चर्य की बात है कि यद्यपि गुप्तकालीन सिक्कों पर राजवंश को कुषाण सम्राटों की सिली हुई वेशभूषाएं पहने हुए दिखाया गया है। अंजता की चित्रकला में सम्राट तथा अभिजात-वर्ग के अन्य सदस्यों को उस काल में भी बढ़िया रेशम अथवा मलमल के 'अंतरीय' पहने हुए दिखाया गया है।

सम्राटों की वेशभूषा प्रायः नीली धारीदार बारीक बुने हुए रेशम की होती थी तथा उनके 'उत्तरीय' लहराते हुए हुआ करते थे। इन दोनों पोशाकों की किनारियां बुनी हुई होती थीं। 'कायबंध' के स्थान पर एक सादा नाड़ा अथवा पट्टा अधिक लोकप्रिय था जिसे एक या दो बार 'अंतरीय' की पकड़ मजबूत रखने के लिए चारों ओर विभिन्न प्रकार से बांधकर बक्कल अथवा गांठ से कस लिया

जाता था। कभी-कभी 'उत्तरीय' को ही मोटे रूप में मोड़कर कमर से टेढ़ा करके पहना जाता था तथा बाएं कूल्हे पर एक बड़ी गांठ लगाई जाती थी जिसपर हाथ ठहर सके या उसे आकस्मिक रूप से बाएं कंधे पर डाल लिया जाता था। अलंकृत 'मुकुट' तथा उत्कृष्ट आभूषणों से ही सम्राट तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति वास्तव में दूसरे राजकीय संगी-साथियों से अलग दिखाई देते थे। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि अलंकृत 'मुकुट' कभी भी उपयोग में नहीं लाए जाते थे किंतु ये केवल देवत्व तथा राजत्व के प्रतीक थे।

वेशभूषा : स्त्रियां

पुरुषों की वेशभूषा के संबंध में उस प्रभाव के बारे में जानकारी प्राप्त करना सहज है जो मुख्य रूप से आक्रमणकारियों तथा व्यापारियों के कारण पुरुषों की वेशभूषा पर पड़ा। तथापि महिलाओं की वेशभूषाएं इतनी अधिक विविधतापूर्ण थीं कि उनके वास्तविक स्रोतों की जानकारी प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

'अंतरीय' की चौड़ाई 18-36 इंच तथा लंबाई 4-8 गज होती थी तथा उसे विभिन्न प्रकार से पहना जाता था। छोटा और बड़ा 'अंतरीय' 'लांगदार' शैली अथवा 'लहंगा' जैसे पहना जाता था तथा इसे पहले दाएं कूल्हे के चारों ओर और तत्पश्चात शरीर के चारों ओर लपेटकर बाएं कूल्हे पर उरस लिया जाता था। उसे कूल्हों के चारों ओर लपेटकर इस प्रकार कसकर बांध लिया जाता था जिससे कूल्हों के मोड़ों पर सम्मोहक बल पड़ें। यह पिंडली तक लंबा होता था। दूसरे प्रकार का अंतरीय 'लांगदार' और 'लहंगा', दोनों ही शैलियों में पहना जाता था। सामान्य रूप से यह बहुत छोटे आकार का 'अंतरीय' होता था जिसकी लंबाई मध्य जंघा तक होती थी तथा उसे 'कलासिका' कहा जाता था। उसे पहनने के लिए पहले 'लांगदार' शैली में खींचा जाता था तथा तीन गज लंबी सामग्री के बड़े सिरे को छोटे 'लहंगे' की भांति चारों ओर लपेटा जाता था। एक सामान्य किस्म का कसा हुआ 'अंतरीय' भी होता था जो सस्ती लिनन का होता था तथा जिसे निम्न श्रेणी के व्यक्ति पहनते थे। टखनों तक लंबा 'अंतरीय' सामान्य रूप से भद्रजन तथा उच्चस्तरीय स्त्रियों द्वारा पहना जाता था। परिचारक प्रायः छोटे किस्म के 'अंतरीय' पहनते थे। परंतु समस्त मामलों में 'अंतरीय' कूल्हे की हड्डियों के सहारे नाभि के नीचे बांधे जाते थे।

'अंतरीय' को यदा-कदा इंडोनेशिया के सारोंग की भांति पहना जाता था—सारोंग एक प्रकार का चौड़ा वस्त्र होता है जो सामान्य रूप से चारों ओर ओढ़कर बगल

के नीचे से जंघा के मध्य तक पहना जाता है। इसके पहनने की गुप्त काल की मुख्य भिन्नता जो पूर्व कालों से अलग थी, वह यह थी कि 'कच्छा' शैली स्त्रियों में कम लोकप्रिय रह गई थी। धीरे-धीरे उसका स्थान अधिक नारी-सुलभ 'लहंगे' अथवा 'लुंगी' ने ले लिया था जिन्हें आज भी इसी रूप में जाना जाता है यद्यपि महारानी तथा राजघरानों की महिलाएं पूर्ववत रूढ़िवादी बनी रही थीं। यह रूढ़िवादी 'लांगदार' शैली आज भी महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारतीय स्त्रियों ने अपनाई हुई है।

घाघरा (स्कर्ट) 'भैरनिवसनी' जो 'अंतरीय' का विकसित रूप है, एक ओर से सिलने पर नाड़े के लिए नलदार बन जाता है, कमर पर घेर बनाकर पहना जाता था तथा उसे एक कमरबंद द्वारा संभाला जाता था। ये सिले हुए घाघरे का प्रारंभिक बेढंगा रूप था तथा इसका उपयोग आरंभिक कांस्य-युग में जर्मन प्रजातियों द्वारा किया जाता था। 'भैरनिवसनी' का उपयोग पहले जैन व बौद्ध साध्वियों द्वारा किया जाता था जिसके पीछे यह विचार था कि स्त्रियों का शरीर पापमय होता है, अतः उसे ढका हुआ रखना चाहिए। 'कच्छा' और 'लहंगा' को भी सम्मोहक माना जाता था क्योंकि उनमें 'अंतरीय' को कूल्हों के चारों ओर खींचकर कसकर बांधा जाता था। विशेष रूप से जैन पंथ की साध्वियां अपने महिला शरीर के रूप-लावण्य को पूर्णतया छिपाने के लिए असाधारण ढंग से पर्याप्त कपड़े का उपयोग किया करती थीं। क्रमशः 'भैरनिवसनी' 'नाड़े' के घाघरे का विकास हुआ जिसे 'घाघरी' कहा गया। 'घाघरी' तंग घाघरा होता है जिसकी लंबाई छह फीट होती है—यह वही लंबाई है जो मूल 'अंतरीय' की होती है। यह मुख्य रूप से ग्रामीण स्त्रियों द्वारा पहना जाता था तथा यह पहनने में अत्यंत आकर्षक लगता था क्योंकि इसमें कपड़े की गोट मध्य में सजावट के लिए खड़ी लगाई जाती थी।

एक भारी सिमटा हुआ घाघरा जो 'घाघरी' का ही एक विकसित रूप था तथा जिसका पहनावा भारत में संभवतया विदेशियों द्वारा प्रारंभ किया गया था, वह भी देखा जा सकता था। ऐसा लगता है कि इसका उपयोग मुख्य रूप से नृत्यांगनाओं द्वारा किया जाता होगा जिसकी अनेक कलियां इकट्ठा होकर घूमने पर आकर्षक प्रभाव उत्पन्न करती थीं। यह घाघरा आज भी अनेक ग्रामीण महिलाओं द्वारा पहना जाता है जिनमें भारत की लंबादी तथा बंजारा घुमंतू जातियां भी सम्मिलित हैं।

स्त्रियां 'लंगोटी' जैसा 'अर्द्धोरूका' जांघिया पहनती थीं जो शालीनता की आवश्यकता के अनुरूप विकसित किया गया था। यह कपड़े की एक छोटी पट्टी होती थी जो कपड़े के एक सहायक टुकड़े के साथ कमर के मध्य से चारों ओर पहनी जाती थी तथा जिसे टांगों के बीच में से खींचकर पीछे टांका जाता था। 'भैरनिवसनी' की भांति जिसे साध्विवों द्वारा उपयोग में लाया जाता था, यह भी

आरंभिक मूल वेशभूषा थी। जैन साध्वियां ऐसे चार 'अर्द्धोरूकाएं' एक के ऊपर एक पहनती थीं, जो लगभग मध्यकाल की 'शुचिता पेटी' जैसी होती थीं।

इसका कोई संतोषप्रद उत्तर तलाशना दिलचस्प होगा कि इस समय विशेष में भारतीय स्त्रियों ने अपने शरीर के ऊपरी आधे भाग को निरंतर ढकना क्यों शुरू कर दिया था। कई सदियों पहले महिलाएं अपनी कमर के ऊपर का भाग सहज रूप से संकोच-रहित नंगा रखती थीं। इसके संभवतया दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि सम्राटों को दरबारी महिला परिचारिकाएं जो ऊपर के वस्त्र पहनती थीं तथा सुंदर विदेशियों के संपर्क में आती थीं, उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि यदि वक्षस्थल को उघड़ा हुआ रखने के बजाए ढका हुआ रखा जाए, तो वह अधिक आकर्षक लगेगा और उसी के अनुसार उन्होंने विदेशियों की पोशाक की शैली अपनाने की होड़ की हो। बौद्ध, जैन और ईसाई धर्मों के प्रभाव के कारण भारत में यह विश्वास फैल गया था कि चूंकि मानव शरीर पापमय होता है, अतः उसे लुभावनी स्थिति से बचाने के लिए छिपाया जाना चाहिए। मध्यकालीन यूरोप में उसी समय महिला वस्त्रों में इसी प्रकार के परिवर्तन हो रहे थे तथा स्त्रियों ने अपने को सिर से पैर तक ढकना शुरू कर दिया था।

वैदिक युग से ही महिलाओं द्वारा वक्ष-बंद का उपयोग किया जाता था जैसा कि यूनान में भी था तथा इसका उपयोग वक्षस्थल को ढकने के बजाए उसके सहारे के लिए किया जाता था। वक्ष-बंद के अतिरिक्त एक सिला हुआ वस्त्र भी होता था जिसे चोलका, चोला, चोली, चोलिका तथा कंचोलिका कहा जाता था जिसका उल्लेख आरंभिक संस्कृत साहित्य में है। आदिकालीन 'चोली' को कपड़े के एक चौकोर टुकड़े से बहुत साधारण तरीके से काटा जाता था जिसमें गले के लिए एक शिगाफ होता था। आदि ताम्र युग में जर्मन प्रजातियों द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से चोली के इसी आरंभिक प्रारूप का उपयोग किया जाता था। बिना सिले हुए वस्त्रों का क्रमिक विकास एक ऐसा तर्क है जिससे बचा नहीं जा सकता क्योंकि यह विकास नितांत व्यावहारिक प्रयोजनों से हुआ था। जहां तक जर्मन प्रजातियों का संबंध है, वस्त्रों का यह क्रमिक विकास ठंड से सुरक्षा के लिए था किंतु भारत में यह शालीनता की दृष्टि से हुआ।

चोली की बनावट में एक और विकास यह हुआ कि चोली के निचले किनारे पर पीछे तह और डोरियां लगाना आरंभ किया गया जिससे ये उघड़ी पीठ वाली हो गई। यह लगभग वैसी ही वेशभूषा थी जैसी कि आज भी राजस्थान तथा अन्य प्रदेशों की स्त्रियां पहनती हैं। चोली के सामने अंचल जैसा कपड़ा रखना जैसा कि कुछेक भित्तिचित्रों में दिखाई देता है, शरीर के सामने के भाग को ठंड से बचाने

के प्रयोजन के कारण हुआ होगा क्योंकि पीठ सामान्यतया ओढ़नी से ढकी हुई रहती थी अथवा यह सामने से खुले हुए पेट को ढकने का एक शालीन तरीका रहा होगा क्योंकि घाघरा या 'लहंगा' नाभि के नीचे पहना जाता था। यहां भी पीठ ओढ़नी से ढकी रहती थी।

एक अन्य चोली जो लगभग कमर के ऊपर तक होती है, पारदर्शी सामग्री से बनाई जाती थी तथा यह विशेष रूप से राजकुमारियों और अन्य राजसी महिलाओं के वस्त्रों का अंग होती थी। यह चोली सामने बांधी जाती है जिसे संभवतया गांठ के माध्यम से बांधा जाता है जैसी कि आज प्रचलित कतिपय 'चोलियां' हैं। इस प्रकार की चोली से पीठ तो पूर्णतया ढक जाती है परंतु वक्षस्थल के सामने का मध्य भाग खुला रहता है। गले के एक ओर से खुलने वाली ईरानी कमीज या 'कुरता' जिसकी दोनों बगलों में शिगाफ तथा किनारों पर गोट लगी होती थी, का पर्याप्त रूप से भारतीयकरण हो गया था। कुरते की एक अन्य शैली तिरछे पल्लू वाले कुरते थे जिनकी बगलें 'अंगरखा' शैली में खुलती थीं। टखनों तक लंबाई वाले जरी के चुस्त कुरते उस समय भी विदेशी ही दिखाई देते थे और यह कहा जा सकता है कि कुरते का यह रूप तूरानी तारतारियों (मध्य एशिया के मंगोलयाई कुल की खानाबदोश प्रजाति) का राजदरबारों में प्रचलित फैशन का योगदान था।

'उत्तरीय' यथावत अस्तित्व में था किंतु इसे बिरले ही कपड़ों की वास्तविक आवश्यकता के बजाए एक रस्म अदायगी के साधन के रूप में पहना जाता था। यह सामान्यतया अजंता के चित्रों में देखा जा सकता है, पीछे की ओर करीने से फैला पल्लू तथा उस समय के फारस के दरबार में प्रचलित सजावटी लहराते रिबन के फैशन जैसा था।

शिरोभूषण और केश-विन्यास

साधारण किस्म की वेणियां अब दिखाई नहीं देती थीं तथा कभी-कभी केशों को इस प्रकार सजाया जाता था कि केशों के संवारने के इस कार्य के लिए जैसा कि जाहिर है ऐसी परिचारिकाओं की आवश्यकता होती थी, जो कुशल होती थीं। विदेशी उद्‌गम की केश विन्यास की दो शैलियां थीं जबकि लंबे बालों को संवारने के जटिल तरीकों की शैलियां दक्षिण भारत और दकन की देन थीं। अवरोक्त शैली गुप्त काल में अत्यंत लोकप्रिय थी। मसूढ़ों और होठों को गहरा काला रंगने के लिए 'मिस्सी' लगाने तथा हथेली व पैरों के तलवों को लाल रंगने के लिए मेहंदी लगाने का रिवाज अत्यंत लोकप्रिय था।

विदेशी मूल के छोटे केश जो सामने से अत्यालंकृत छोटे छल्लों के घुंघराले बाल होते थे, आज दिखाई देने वाले केशों से सर्वथा भिन्न थे अथवा उन्हें कंधों तक या नीचे लटकते हुए ढीला छोड़ दिया जाता था जिन्हें एक पट्टिका या फूलों की माला से थामे रखा जाता था।

देशज शैली लंबे बालों में ही दिखाई देती थी। इसमें केशों को ऊपर या गर्दन के नीचे एक जूड़े में बांधा जाता था अथवा उनमें सिर के एक ओर गांठ लगाई जाती थी या सिर की चोटी पर कुंडल बनाया जाता था। जूड़ा स्वयं में कभी-कभी एक कसी हुई साधारण गांठ होती थी अथवा कभी अंग्रेजी के आठ के अंक के जैसे होता था अथवा लंबे या ढीले कुंडल का होता था जिसमें सदैव फूलों अथवा कमल की बड़ी कलियां लिपटी रहती थीं। इसके अतिरिक्त रत्नों का जाल 'रत्नाजली' अथवा मोतियों का जाल होता था जिसे 'मुक्तजाल' कहते थे। इसे जूड़े के ऊपर पहना जाता था।

छोटे अथवा लंबे केशों के साथ शिरोभूषण भी उपयोग में लाए जाते थे तथा सिर की मांग के विभाजन के लिए मोती की लड़ियां अथवा रत्नजटित सिरबंद लगाए जाते थे। छोटे केशों को संभालने के लिए सामान्यतया सादा अलंकृत पट्टियों का उपयोग किया जाता था। पगड़ियों का चलन भी एकदम समाप्त नहीं हुआ था तथा महिलाएं वस्तुतया पगड़ियां पहनती थीं जो जरी अथवा फीते की सामग्री की होती थीं तथा इनसे केश पूर्णतया ढक जाते थे।

इस काल में पुष्पों के अधिक उपयोग का ज्यादा महत्व नहीं था। जूड़े के चारों ओर सजाए जाने के अलावा शिरोभूषण के रूप में भी पुष्पों का उपयोग किया जाता था तथा स्त्रियां विभिन्न तरीकों से पुष्पों का उपयोग सज्जा के रूप में करती थीं। दकन में निम्न वर्गों (नौकरी पेशा) तथा कृषक स्त्रियों की केश शैलियां समान रूप से उतनी ही अलंकृत होती थीं जैसी उच्च वर्गों की स्त्रियों की केश शैलियां हुआ करती थीं।

पुरुषों के शिरोभूषण अथवा पट्टियों के रत्नजटित मुकुटों में फूलों की मालाएं लगी होती थीं जिन्होंने पगड़ी का स्थान ले लिया था। धीरे-धीरे समय के साथ इन्हें सम्राट भी धारण करने लगे थे जब वे औपचारिक रूप से देशज वेशभूषा पहनते थे। परिचारक भी कंधों तक लंबे केशों के साथ यही पहनते थे। तथापि, गुप्तकालीन सिक्कों पर सम्राट पारथियन-कुषाण वस्त्रों में दिखाई देते हैं और शिरोवस्त्र के रूप में वे कनपटी की टोपी या कंटोप पहने हुए दिखाई देते हैं। उत्तरोलिखित वस्त्र सम्राट द्वारा औपचारिक अवसरों पर प्रयुक्त किए जाते थे जिनकी आवश्यकता सैनिक वैभव के लिए अथवा आखेट के खेलों में होती थी।

राजसी संगत में, उच्च अधिकारियों जैसे प्रबंधक, मंत्रीगण, सैनिक अधिकारियों, नागरिक अधिकारियों तथा अन्य ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा पगड़ियां पहनी जाती थीं जो उनकी विभिन्न श्रेणियों को दर्शाने का एक विशिष्ट प्रतीक थीं। ये पगड़ियां बारीक मलमल की भी होती थीं। इन्हें सिर के मध्य में पेशानी पर सिर की बड़ी चोटी के चारों ओर बांधा जाता था अथवा ये धारीदार पगड़ियां होती थीं जिन्हें पहनते समय इनके चौड़े कपड़े को इस प्रकार मोड़ा जाता था तथा उसमें ऐसे बल दिए जाते थे कि उनके बटी हुई रस्सी के जैसा होने का आभास होता था। मंत्रीगण प्रायः ब्राह्मण होते थे। उनके केश धार्मिक रिवाज के अनुसार सिर की चोटी को छोड़कर मुड़े हुए होते थे।

सामान्यतया पुरुष अपने सिर के बाल खुले रखते थे, जो कंधों तक लंबे लटके होते थे। ये 'गुर्णकुंतल' शैली में घुंघराले होते थे तथा केशों को यथास्थान बनाए रखने के लिए उनमें सिरबंद भी लगाए जाते थे। सिरबंदों को मोतियों की माला से सजाया जाता था। छोटे केश रखने का भी आम चलन था। ये आज के जैसे ही होते थे सिवाय इसके कि मांग का स्पष्ट विभाजन बिरले ही दिखाई देता था।

तथापि, पुरुषों की केश सज्जा में फैशन का पुट दिखाई देता था जो कभी-कभी सिरों पर बेतरतीब बिखरे हुए दिखाई देते थे जिनसे विग पहनने का आभास होता था। अनेक बार पहले ही जैसे एक चोटी की गांठ बनाई जाती थी जिसमें केश के एक भाग को अधिक संवारा जाता था तथा शेष केश कंधों पर घुंघराले लटके रहते थे।

आभूषण

स्वर्ण अथवा 'हरिण्य' का सामान्यतया पहले से भी अधिक उपयोग किया जाता था, विशेष रूप से दकन में जहां सोने की खानें थीं। पुरुष तथा स्त्रियों, दोनों के लिए उत्कृष्ट स्वर्ण आभूषण बनाए जाते थे, जो कुटाई तथा जरदोजी का उत्कृष्ट कार्य होता था तथा रत्नों को सोने के तारों में अत्यंत कुशलतापूर्वक जड़ा जाता था, विशेष रूप से मोतियों की जड़ाई उच्च कोटि की होती थी। कर्णफूलों को सामान्यतया 'कुंडल' के रूप में परिभाषित किया जाता था, जो मुख्य रूप से दो प्रकार के होते थे और ये दोनों ही प्रकार के कुंडल गोलाकार होते थे। एक तो बड़ी अंगूठी जैसे होते थे तथा दूसरे बटन के प्रकार के 'कर्णफूल' होते थे, जो सादा अथवा अलंकृत परत के होते थे। 'बाली', जो छोटे सोने के तार की गोलाकार बाली

होती थी, कान के ऊपर के भाग में मोतियों की लड़ी के साथ अथवा दो मोतियों तथा एक मनके के साथ पहनी जाती थी। बालियां उन दिनों भी लोकप्रिय थीं। तत्पश्चात लंबी अंगूठी के प्रकार के कर्णफूल विकसित हुए जिनमें लटकन लगे हुए होते थे और जो सिर की हरकत के साथ ही हिलते थे, जिन्हें 'कंकाल कुंडल' कहा जाता था।

'सूत्र' गले की एक जंजीर होती थी। इस जंजीर के मध्य में यदि कीमती पत्थर लगे हुए होते थे और यह सोने की बनी होती थी, तो इसे 'हेमसूत्र' कहा जाता था। किंतु यह काल मोती के हार अथवा 'मुक्तावली' का था। छोटे मोतियों की एक लड़ी को 'हारवष्टि' बड़े मोतियों की एक लड़ी जंजीर को 'तरहरा' और मोतियों के मध्य में एक रत्नजटित जंजीर को 'शुद्ध एकावली' कहते थे। तथापि, शानदार 'विजयंतिका' जो मोतियों, मनकों, रत्नों, नीले कीमती पत्थरों तथा हीरों से निर्मित होता था, एक ऐसा हार था जिसकी अत्यधिक मांग थी। 'निश्क' अथवा सिक्के के हारों की लोकप्रियता भी निरंतर बनी हुई थी।

बाजू के ऊपर पहने जाने वाले आभूषणों को 'अंगड़' और 'केयूर' के रूप में जाना जाता था। इनमें पूर्व वर्णित कुंडलित सर्प के समान तथा पश्चातवर्ती जरदोजी के काम का या रत्नजटित गोलाकार होता था। कंगन 'वलय' सामान्यतया सोने के होते थे तथा उनमें कीमती पत्थर जड़े हुए होते थे। हाथों में सीप और हाथी दांत की क्रमिक आकार की चूड़ियां पहनी जाती थीं जैसा कि आज भी आदिवासी महिलाएं पहनती हैं। हाथ की अंगूठी 'अंगुलीय' सोने की अथवा कीमती पत्थर जड़ी 'रत्नांगुलीय' होती थी। त्रिमुकुट—किरीट और मुकुट—'मुकुट' अभिजात वर्ग के पुरुषों तथा स्त्रियों द्वारा पहने जाते थे तथा ये विशेष रूप से शानदार होते थे। इनमें टंके मोती चेहरे के चारों ओर सुंदर ढंग से लटके होते थे। ऊपर वर्णित गहने पुरुष तथा स्त्री, दोनों के लिए ही होते थे परंतु स्त्रियों के लिए अलग से विशिष्ट गहने भी होते थे। इन गहनों में रत्नजटित कमरबंद, पाजेब तथा मोतियों या पुष्पों का एक आकर्षक गहना, होते थे जिसे 'वयकक्ष' शैली में वक्ष और पीठ पर आड़ा-तिरछा पहना जाता था। इसे यदा-कदा बकसुए से मध्य में संभाले रखा जाता था। एक बेहद उत्तेजक मोजाबंद के जैसा गहना 'पद-पात्र' कभी-कभी स्त्रियों द्वारा जांघ के ऊपर के भाग पर पहना जाता था। यह अत्यंत सजावटी गहना होता था जिसमें मोतियों की बंदनवार तथा अन्य गहने सजे हुए होते थे।

स्त्रियों द्वारा 'मेखला' कूल्हों पर काफी नीचे पहनी जाती थी तथा 'कटिसूत्र' से लटकी होती थी। 'कटिसूत्र' कमर से बंधी डोरी होती थी तथा यह 'अंतरीय' की ऊपरी किनार से ढकी रहती थी जिसमें इसे लपेटा जाता था। इस डोरी के

मध्य में सम्मोहक बकसुए से 'मेखला' लटकी होती थी जिसके ऊपर या नीचे कपड़े की एक चुन्नट डाली हुई छोटी झालर लटकी होती थी। यह चुन्नट वाली झालर भरतनाट्यम की नृत्यांगनाओं की वेशभूषा में आज भी देखी जा सकती है। एक सादा, सीधा पट्टा 'अंतरीय' को थामने के लिए पुरुषों द्वारा उपयोग में लाया जाता था अथवा कभी-कभी एक चौकोर, गोल, गुलाब की शक्ल का अथवा आयताकार बक्कल भी उपयोग में लाया जाता था।

स्त्रियों के टखनों में छोटे घुंघरुओं की किंकिणी उनके चलने पर बजती थी अथवा उनके 'नूपुर' रत्नजटित मनकों से भी बनाए जाते थे जिन्हें 'मणिनूपुर' कहते थे। यद्यपि सभी वर्गों की स्त्रियों द्वारा पाजेब पहनी जाती थी फिर भी उस समय की मूर्तिकला में देवियों के पैरों में पाजेब दिखाई नहीं देतीं।

फूलों के हार 'माला' के जैसे केशों में गूंथ कर तथा कुंडलाकार गर्दन अथवा कमर या वक्ष पर आड़े-तिरछे पुष्पाहार के रूप में पहने जाते थे। यह पुष्पमाला प्रायः सुगंधित कदंब के फूलों की होती थी। सम्राट सैनिक अभियानों पर भी सफेद फूलों की पुष्पमाला पहनते थे तथा राज्य के दरबारी अपने केशों की चोटियों में फूलों के गुच्छे लगाते थे। स्त्रियां स्वयं को फूलों से सजाती थीं तथा सुगंधित पुष्पों की मालाएं उनके कानों से लटकी रहती थीं। वे अपने मस्तक फूलों से सजाती थीं तथा सदाबहार के फूलों की मालाएं उनके कूल्हों पर लटकी रहती थीं।

सैन्य वेशभूषा

गत शताब्दियों में सातवाहन युग के कतिपय अवसरों को छोड़कर, देशज सेना की कोई निश्चित वरदी नहीं थी। कुषाण सेना ही एक ऐसी सेना थी जो सुसज्जित होने के कारण गुप्त कालीन सैन्य वरदी का मुख्य आधार बनी। सम्राट स्वयं औपचारिक अवसरों पर कुषाण काल की राजसी वेशभूषा को प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में धारण करते थे। प्रारंभिक काल में गुप्त सैनिक अपने खुले वक्ष को आंशिक रूप से ढकने के लिए छह रत्नजटित पट्टों 'छन्नवीर' के साथ 'अंतरीय' पहनते थे। विदेश से प्रभावित 'कंचुक' का यह परिष्कृत विकसित रूप था जो पायजामे अथवा 'जांघिए', ऊंचे बूटों तथा कंटोप या सिर की टोपी के साथ पहना जाता था और कभी-कभी केशों को सिर के पीछे बांधने के लिए एक पट्टिका का उपयोग भी किया जाता था।

तत्पश्चात सैनिकों की वरदी के रूप में छोटी अथवा लंबी आस्तीन वाला टखनों तक लंबा कुरता 'कंचुक' पहना जाता था, जो मध्य में खुलता था और जिसका

गला वी (V) की शक्ल का या गोल होता था। कभी-कभी इन कुरतों को काले अगरू की लकड़ी की लेई से चिह्नित किया जाता था, जो एक प्रकार से टाई की रंगाई होती थी अथवा जिस रूप में इसे आज जाना जाता है 'बांधनी' होती थी। यह उनकी सैनिक वर्दियों का छलावरण का एक ढंग होता होगा। यह संभव है कि ये कुरते छोटे 'अंतरीय' पर पहने जाते होंगे क्योंकि पैदल सैनिक अपने खुले पैरों को ढकने के लिए कभी-कभार ही पायजामे पहनते थे। टखनों तक लंबे 'कंचुक' के स्थान पर एक छोटा कढ़ा हुआ ब्लाउज 'चोलका' यदा-कदा छोटे 'अंतरीय' के साथ पहना जाता था। कमर के चारों ओर एक या दो बार 'कायबंध' लपेटा जाता था जिसमें एक छोटी कटार या घुमावदार तलवार लगी होती थी। ढालें घुमावदार या आयताकार होती थीं। आयताकार ढालों को राहु से भी सजाया जाता था। छोटे 'अंतरीय' केवल कुछ ही सैनिक पहना करते थे, जो प्रायः धारीदार होता था तथा इस देशज वेशभूषा के साथ पहिए की शक्ल के चक्र कर्णफूल उस समय भी पहने जाते थे। शिरोभूषण के रूप में सामान्यतया सिर की साधारण टोपी होती थी अथवा एक रूमाल या कपड़े का टुकड़ा होता था जिसे सिर के चारों ओर पगड़ी के रूप में बांधा जाता था।

रिसाले के वस्त्र अधिक अलंकृत होते थे जो शैली में मूल पारथि-कुषाण वस्त्रों के निकट थे, इनमें लंबी झालरदार आस्तीनों का पिंडली तक लंबा ऊनी कोट पहना जाता था। इनके साथ सिर पर एक पट्टी अथवा सिरबंद पहना जाता था अथवा कभी-कभी एक सफेद पगड़ी पहनी जाती थी। रिसाले के अन्य सैनिक अधिक रंगीन तथा विविध वेशभूषा पहनते थे। अर्द्ध-जंघा तक लंबे कुरते जरी के अथवा छपे हुए कपड़े के होते थे (उदाहरण के लिए नीले छींटों का पीला, हरा चारखाना जिसमें हर समवर्ग में फूलों की अनुकृति के ठप्पे छपे होते थे अथवा पीले रंग के कपड़े जिसमें चिड़ियां, गुलाब की माला, समचतुर्भुज शक्ल में मुख्यतया नीले, गेरुआ रंग के पीले अथवा सफेद रंग के बने होते थे), पायजामा और 'अंतरीय'—एक सजावटी टोपी-नुमा सफेद अथवा पीले रंग के फूलों की नक्काशी के शिरोभूषण के साथ यह रंगीन वरदी पूर्ण होती थी।

महावत छोटी आस्तीनों के 'चौलका' पहना करते थे जिनके गले, किनारों और आस्तीनों पर सजावटी बंद लगे हुए होते थे। इनके पहनने से महावत अत्यंत आकर्षक दिखाई देते थे। इसके साथ वे सादा या सोने की धारियों के कपड़े के छोटे जांघिए तथा सिर पर टोपी या रूमाल पहनते थे। स्वयं सम्राट भी युद्ध के लिए सुसज्जित होते समय एक छोटा चुस्त आस्तीन का 'कंचुक' तथा एक अलंकृत पगड़ी के साथ 'सरपेंच' पहनते थे। उनके अंगरक्षक नेपाली 'खुखरी' जैसी घुमावदार

तलवारें तथा गैंडे की खाल की चारखानेदार परिरूप की ढालें लेकर चलते थे। उनके खड़गधारी एक चुस्त किस्म का कुरता पहनते थे, जिसके नुकीले सिरे घुटनों तक पहुंचते थे तथा 'कायबंध' को कमर में दो बार लपेटते थे।

विभिन्न सैनिक टुकड़ियों के नायक अथवा मुखिया, मोती की कशीदाकारी के कुरतों में सजे होते थे जिन्हें प्रसिद्ध 'स्तवर्क' के कपड़े से बनाया जाता था, जो ससानियन मूल का होता था तथा विभिन्न रंगों की 'चादरें' पहनी जाती थीं अथवा वे पूर्णतया मध्य एशिया के वस्त्रों से सज्जित होते थे जिनमें V की शक्ल के गले वाला गहरा नीला ऊनी कुरता तथा लंबी पूरी आस्तीनों के कुरते के साथ धुंधले काले रंग के पायजामे तथा सिर पर मध्य एशिया की शांकव टोपी के स्थान पर भारतीय मूल की केसरिया पगड़ी होती थी।

अधिक सुरक्षा के लिए कवच पहना जाता था। इसे 'सिनेकोला' कहा जाता था जो संभवतया चीनी मूल का था। यह आस्तीन-विहीन होता था तथा इससे शरीर का सामने और पीछे का हिस्सा ढक जाता था और इसे धातु से बनाया जाता था। सैनिकों के कंटोप को 'शिरस्त्रजाल' कहते थे। तीर दो प्रकार के होते थे : पहला साधारण, एक ही टुकड़े का तीर तथा दूसरा दोहरे मोड़ का शास्त्रीय तीर जो संभवतया तीन टुकड़ों से बनाया जाता था।

धार्मिक व्यक्ति

गुप्त काल तक हिंदू 'संन्यासी' छाल की पट्टियों के वस्त्र पहनना धीरे-धीरे छोड़ चुके थे तथा उन्होंने लाल गेरुए वस्त्र अपना लिए थे, जो बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों से बिलकुल मिलते-जुलते थे। इतिहास के इस काल से ही हिंदू 'संन्यासी' और बौद्ध भिक्षुओं में दिखने में एक विशेष 'समानता' दृष्टिगोचर होने लगी थी। इससे पहले उनमें पर्याप्त भिन्नता थी। 'संन्यासी' का गेरुआ 'उत्तरीय' 'वैकक्ष' शैली में बांधा जाता था (वक्ष के ऊपर आर-पार) अथवा उसी रंग का एक तार-तार चिथड़ा हृदय के ऊपर बांधा जाता था तथा कभी-कभी बाएं कंधे पर हिरन की खाल डाल ली जाती थी। यदा-कदा उसी लाल गेरुए रंग का बाघ की खाल का कपड़ा एक काले चमड़े के पट्टे से बांध लिया जाता था और इस प्रकार इसी के साथ संन्यासी की वेशभूषा पूर्ण होती थी। तत्पश्चात इन वस्त्रों का स्थान सिली हुई वेशभूषा ने ले लिया जो या तो सिले हुए वस्त्र अथवा पैबंद-लगा कुरता होते थे। सिर के केश सामान्यतया उलझे हुए होते थे और सिर पर एक चोटी होती थी जो माथे के एक ओर से दूसरी ओर डोरी या फीते से बंधी होती थी जिसके साथ यदा-कदा माथे

पर भयानक खोपड़ी का चिह्न चिपका होता था। राख रगड़ने से उनके उलझे हुए सिर के बालों का रंग पीला पड़ जाता था, जो सूरज की किरणों के प्रकाश में विरंजित दिखाई देते थे।

ब्राह्मण आचार्य सामान्यतया छोटे 'अंतरीय' तथा 'उत्तरीय' पहनते थे, 'उत्तरीय' छोटी-छोटी लीरों के भी होते थे, जो परस्पर जुड़ी हुई होती थीं। सिर ढकने के लिए वे चोटी पर 'कंटोपा' (टोपी) पहनते थे।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणि तब लिनन अथवा रेशम पहनते थे। अपेक्षाकृत दरिद्र भिक्षु अपने वस्त्र सस्ते में छुआरों, लाल मिट्टी, लाल पत्थर के चूरे अथवा जंगली नाशपाती से रंगते थे। भिक्षु एक 'समघटी', 'उत्तरासंग' (ऊपर के वस्त्र) तथा 'अंतरवास' (अधोवस्त्र) पहनते थे। 'अंतरवास' 36 इंच चौड़ा और ढाई गज लंबा होता था। इसे कमर के चारों ओर लपेटा जाता था तथा करधनी से बांधा जाता था। प्रत्येक पंथ के भिक्षुओं का करधनी और अंदर के वस्त्र पहनने का ढंग भिन्न होता था। 'समघटी' ढाई गज का चौकोर कपड़े का टुकड़ा होता था जिसमें गले पर पांच अंगुल चौड़ा एक टुकड़ा जुड़ा होता था। इसमें एक खींचने वाला नाड़ा लगा रहता था जो वक्ष से बंधा हुआ होता था। जब मौसम विशेष रूप से ठंडा होता था, बौद्ध भिक्षु और जनसाधारण ऊनी वस्त्र पहनते थे जिसे 'हाई-पा' कहते थे जिससे शरीर का सामने का भाग ढक जाता था तथा बाएं कंधे से लेकर यह पीठ के पीछे तक जाता था। यह दाएं हाथ के बाजू के नीचे स्थिर हो जाता था। यह लगभग हिरन अथवा मृग की खाल के पहनने जैसा होता था। पूर्व में इसे धर्म-संघी सुरक्षा के लिए पहनते थे।

'भिक्षुणियां' भी भिक्षुगण जैसे वस्त्र ही पहनती थीं। इनमें केवल एक ही अंतर था कि भिक्षुणियों के 'अंतरीय' किनारों पर घाघरे के जैसे सिले हुए होते थे तथा ये 36 इंच चौड़े एवं 72 इंच लंबे होते थे। घाघरे की कलियों को इकट्ठा करके कमर से बांधा जाता था। किशोरवय की भिक्षुणियां अपने वक्ष ढकती थीं। इन तीन कपड़ों के अतिरिक्त भिक्षु और भिक्षुणियों को अंदर के कपड़ों के दो जोड़े, एक चटाई और तौलिया रखने की अनुमति थी।

जैन मुनि सर्वथा बिना सिले लिनन अथवा सूती कपड़े पहनते थे जिन्हें काटा या जोड़ा नहीं जाता था जिसका अर्थ यह हुआ कि उन वस्त्रों को आवश्यक माप के अनुरूप बुना जाता था। उनकी 'चादर' 'अंतरीय' और 'कायबंध' कभी-कभी ऊंट के बालों, टाट और छाल के रेशों से भी बनाए जाते थे। रेशम के इस्तेमाल की अनुमति बहुत कम थी और इसके उपयोग को सामान्यतया हतोत्साहित किया जाता था। 'कायबंध' चार अंगुल से अधिक चौड़ा नहीं हो सकता था। जैन साध्वियों

के लिए ये नियम अधिक स्पष्ट थे तथा उनके द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों की संख्या आश्चर्य में डालने वाली थी। वस्त्रों की अधिक संख्या होने का कारण शरीर को यथासंभव भली प्रकार ढकना था। शरीर के अवर भागों को ढकने के लिए एक के ऊपर एक चार भिन्न 'लंगोटी' जैसे जांघिए 'अर्द्धोरूका' पहने जाते थे। उनके ऊपर एक 'लहंगा' पहना जाता था, इसे 'भैरनिवसनी' कहा जाता था तथा इसे कूल्हों पर कसकर नहीं बांधा जाता था एवं इसे 'कायबंध' के स्थान पर एक नाड़े से बांधा जाता था क्योंकि 'कायबंध' को अति फैशन की वस्तु समझा जाता था। स्तन लगभग सवा गज चौड़े 18 इंच लंबे कपड़े से ढके जाते थे। यह कपड़ा वक्ष के चारों ओर कसकर बांधा जाता था तथा एक ओर स्थिर होता था। 'ओपाक्षिकी' एक 27 इंच चौकोर कपड़ा होता था जिससे वक्षस्थल और पीठ का एक भाग ढक जाता था तथा इसे बाएं कंधे पर बांधा जाता था : 'वयकक्षिकी' जो लगभग समान होती थी, ठीक विपरीत दिशा में पहनी जाती थी तथा उसे दाएं कंधे पर बांधा जाता था। इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है कि कितना भद्दा और अनाकर्षक यह दृश्य होता होगा। 'समघटी' अंतिम रूप से एक दोहरा लबादा होता था। प्रत्येक साध्वी को ऐसे चार लबादे जो एक से चार गज की विभिन्न चौड़ाई एवं दो गज लंबाई के होते थे, पहनने की अनुमति थी। प्रत्येक लबादा विशिष्ट अवसर पर पहना जाता था तथा एक लबादा जो डेढ़ गज का होता था, केवल शौच के समय प्रयुक्त किया जाता था। इसके अतिरिक्त दो गज लंबी एक चौकोर शाल खराब मौसम के समय विशेष रूप से प्रयुक्त की जाती थी। जैन साध्वियां अथवा मुनिगण जूते नहीं पहनते थे।

वस्त्र उद्योग और रंगाई-छपाई

गुप्त काल में उत्कृष्ट कोटि के वस्त्र उपलब्ध थे जो छपे हुए, रंगे हुए तथा श्रेष्ठ कोटि के नमूनों के बुने अथवा कढ़े हुए होते थे। इस काल में सूती कपड़े की छपाई की कला में पर्याप्त सुधार हुआ तथा आज के अनेक परंपरागत छपाई के कार्यों का सूत्रपात इसी काल में हुआ। इनमें चारखाना, धारीदार, हंस, हिरण तथा अन्य आकृतियां बने वस्त्र थे। मलमल पर बढ़िया किस्म की कशीदाकारी की जाती थी तथा सैकड़ों प्रकार के फूलों व चिड़ियों की आकृतियां कुशलतापूर्वक बनाई जाती थीं, साथ ही बारीकी से जरी का कार्य किया जाना भी जारी था। दकन और पाइथन के नमूनों का फूल-पत्तियां बनाने का जरी का काम आज के जामावार और हिमरू के कपड़ों जैसा ही था। इसमें पूर्व वर्णित ऊन की पृष्ठभूमि में रेशम से फूल-पत्तियां

बनाने का कार्य है तथा पश्चात वर्णित का ताना-बाना सूती होता था। ढाका की मलमल उसकी पारदर्शिता के लिए प्रसिद्ध थी और यह इतनी महीन होती थी कि केवल कपड़े की उत्कृष्ट सोने की किनार से ही कपड़े के अस्तित्व का आभास होता था। इससे भड़कीले रंगों के कपड़ों पर पारदर्शी वस्त्र पहनने का एक सुखद अहसास होता था। इससे पूर्व कपड़े के पारदर्शी होने से शरीर के निचले भाग की नग्नता प्रकट होने का आभास होता था।

बनारस के प्रसिद्ध सोने और चांदी के जरी के वस्त्र अपनी प्राचीन परंपरा के साथ अभी भी उपयोग में लाए जाते थे तथा उत्तर व उत्तर-पश्चिम में कशीदाकारी की कला अपने विकास के शिखर पर पहुंच गई थी। काले व सफेद चारखाने के रेशम की बुनाई के आवरण विशेष रूप से गद्दों के लिए बनाए जाते थे। गहरे रंगों के कपड़ों पर सोने-चांदी की कशीदाकारी के ये सुंदर आवरण चांदी के तारों या चार पंखड़ीदार पुष्पों या शतरंज की बिसात के नमूनों के कतरनों की सामग्री से बने होते थे। बिस्तर की विशेष चादरें जिन्हें 'निकोला' और 'प्रछद्पात' कहा जाता था, के साथ गलीचे और कालीन भी बुने जाते थे, जिन्हें 'रल्लका' और 'कंबला' कहते थे।

उन दिनों अत्यंत आकर्षक रंगाई-छपाई होती थी तथा कपड़ों के तिरछे टुकड़े जो तब बहुत लोकप्रिय हुआ करते थे, हल्के और गहरे रंगों से रंगकर आकर्षक ढंग से परस्पर जोड़े जाते थे। यह सुंदर प्रभाव रंगाई की बंधेज की तकनीक से उत्पन्न किया जाता था। गुजरात और राजस्थान की विभिन्न नमूनों की बंधेज की छपाई 'पुलक बंधे' कहलाती थी तथा स्त्रियों के ऊपरी वस्त्रों में उसका अत्यधिक उपयोग होता था। विरंजन की यह प्रक्रिया निपुण होती थी तथा हल्के रेशम की बंधेज को 'दुकूल' के रूप में वर्गीकृत किया जाता था। एक समय बनारस के जरी तथा कमखाब के कपड़े पहनने का प्राधिकार केवल धनाढ्यों को था, तब ये निर्धन वर्ग द्वारा उत्सवों के अवसरों पर तथा वधू की पोशाक के लिए उपयोग में लाए जाते थे, जिसकी 'रसिमल' नामक एक अपेक्षाकृत सस्ते कपड़े की किस्म उपलब्ध थी।

मूल रूप से फारस में निर्मित विशेष रूप से महंगे रेशमी कपड़े 'स्तवर्क' का भारत में आयात किया जाता था, ऐसी जानकारी है। यह ऐसा कपड़ा था जिसमें चमकीले मोतियों की लड़ियां टंकी होती थीं और जिसे केवल राजसत्ता के व्यक्ति ही पहनते थे।

शैलियां

महान सभ्य गुप्त साम्राज्य में हमें रत्नजटित शिरोभूषण तथा मलमल के कलीदार 'लहंगे' मिलते हैं, जो देह की कामुकता को पूर्णता तथा चाल में उन्मुक्त गति प्रदान करते हैं। मनः स्थिति, शांत, सम्मोहक तथा शिथिल है और इसके साथ हैं कमनीय देहों की मनमोहक गतियां, अलसाई मदभरी नशीली आंखें, जो कोमल स्वप्निल संसार का सृजन करती हैं। मोतियों की लड़ियों से सजे तोरणद्वार, मुकुट तथा गले में पड़ी मोतियों की मालाएं मनोहारी आकृतियों की चाल की थिरकन को बढ़ा देती हैं।



54. परिचारिका
(अजंता, गुफा XVII)

अंतरीय
'लांगदार' शैली में काफी ओछा पहना हुआ; मध्य में दोनों सिरों में गांठ लगाकर टांगों के बीच में से निकालकर खड़ी गोल लंगोट पीठ के पीछे मध्य में समेट कर उरसी हुई, लांग टखनों तक नीचे लटकी हुई; एक सिरा मेखला के नीचे उरसा हुआ तथा दूसरा सिरा उसके ऊपर पड़ा हुआ।

मुक्तावली
छोटे मोतियों का एक लड़ी का हार *(हारयष्टि)*

केयूर
बाजू पर पहना जाने वाला आभूषण, नलाकार, मोती जड़ा तथा रिबन से बंधा हुआ

वलय
जरदोजी का काम किया हुआ कंगन

मेखला
प्लेटों से सजा हुआ कूल्हों पर पहना कमरबंद; एक ओर लटकी हुई कपड़े की झालर जो पीछे पीठ पर उरसने के बाद चारों ओर खींचकर बांधे गए 'अंतरीय' के सिरे का एक भाग हो सकती है जिसे सामने से पुनः उरसा हुआ है।

कुंडल
साधारण अंगूठी के स्वरूप के कर्णफूल

नूपुर
साधारण बेलनाकार पाजेब

केश-विन्यास
माथे पर कुछ छल्ले डालकर पीछे की ओर एक वेणी में गुंथे केश; वेणी में लगा चुटीला तथा पुष्पमाला व एक अर्द्धाकार आभूषण केशों की बीच की मांग के किसी भी ओर पहना हुआ।

यह संभव है कि वह बहुत बारीक कपड़े की चोली भी पहनती हो। उसके हाथ में चंवर है। (चौरी)



55. राजकुमारी
(अजंता, गुफा I)

लहंगा
'अंतरीय' अब लहंगा हो गया है; पहले इसे बाएं कूल्हे पर बांधा जाता है तथा तत्पश्चात शरीर के चारों ओर लपेट कर इसकी कलियों को बाएं कूल्हे पर कसकर बांधा जाता है अथवा साधारण रूप में पहना जाता है जैसा कि रेखा चित्र में दर्शाया गया है।

उत्तरीय
वक्ष पर पहना हुआ पारदर्शी कपड़े का

मुक्तावली
बड़े और छोटे कई मोतियों के हार जिसमें लंबी लड़ी का हार सम्मिलित है जो वक्ष के मध्य में पड़ा रहता है।

वलय
प्रत्येक कलाई पर पहना जाने वाला एक साधारण तथा एक अलंकृत कंगन

केयूर
जरदोजी का काम किया हुआ बाजूबंद जिसमें बाजू पर मोती बंधे होते हैं।

बाली
मोतियों की लड़ी के अंगूठी के स्वरूप के कर्णफूल; कानों के ऊपर की लौ में एक छोटी साधारण मुरकी

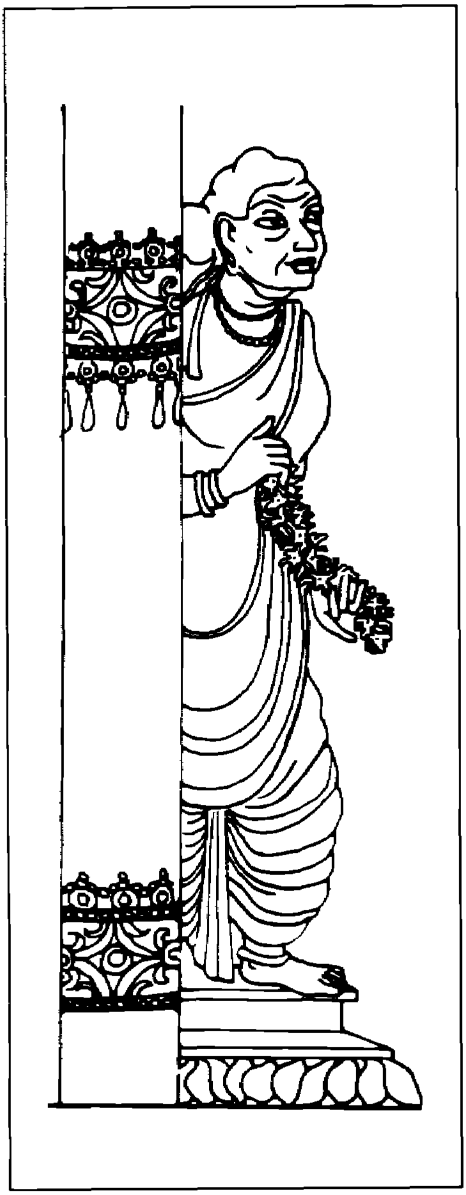
अंगुलीय
दाएं हाथ की छोटी अंगुली में पहनी जाने वाली अंगूठी

नूपुर
अति साधारण पाजेब

किरीट
एक सजावटी शिरोभूषण

केश-विन्यास
अलंकृत, पुष्पों तथा गहनों से सजा हुआ, गर्दन में गुद्दी पर एक बड़ा जूड़ा बना हुआ

स्टूल अथवा छोटी पीठदार कुर्सी (पीढ़ा) में लकड़ी के चार पाए ठीक वैसे ही लगे होते हैं जैसे आजकल भारत के अनेक भागों में मिलते हैं। इसे मोती-जड़े अथवा क्रास की शक्ल के रंग-छपे कपड़े से ढका जाता है। पीठ पर लगे तोषक को छपे हुए कपड़े से ढका जाता है तथा पांव रखने की गद्दी के किनारों पर मोती लगे होते हैं।



56. बूढ़ी स्त्री
(अजंता, गुफा XVII)

साड़ी
अंतरीय का लंबा रूप, बायां सिरा टांगों के बीच से निकालकर पीछे उरस लिया जाता है; दाएं बड़े सिरे को शरीर के चारों ओर लपेटकर सामने से दाएं कंधे पर डाल लेते हैं जिसकी तहें दाईं ओर दिखाई देती हैं।

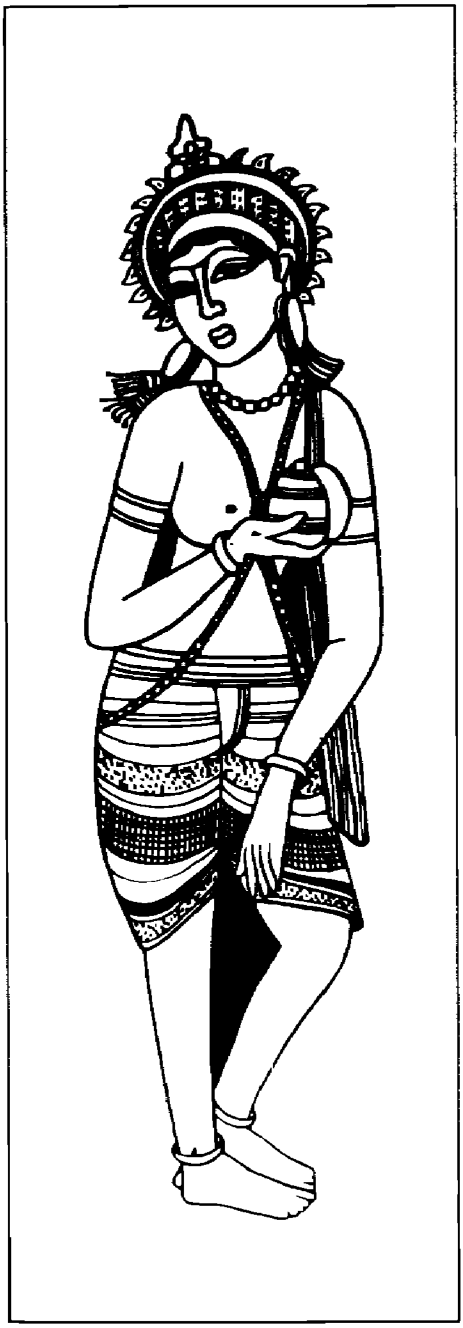
मुक्तावली
गले में मोतियों की दो लड़ियां

वलय
प्रत्येक कलाई में दो साधारण कंगन

कुंडल
अंगूठी के प्रकार के कर्णफूल

केश-विन्यास
पीछे की ओर खींचकर बांधी हुई गांठ

उसके हाथ में पुष्पमाला है।



57. **उपासिका की आकृति**
(अजंता, गुफा II)

अर्द्धोरूका
'लंगोटी' जैसा कतरनों की बनावट का जांघिया—कपड़े की एक छोटी धज्जी कमर के चारों ओर बंधी हुई तथा कमर के मध्य से एक कतरन दोनों टांगों में से निकालकर पीठ के नीचे उरसी हुई

चोली
पारदर्शक कपड़े का छोटा ब्लाउज

वैकक्ष
वक्ष पर आड़ी पड़ी मोतियों की दो लंबी लड़ियां

मुक्तावली
गले में मोतियों की माला

कुंडल
प्लेट के प्रकार के बड़े कर्णफूल

उत्तरीय
बाएं कंधे पर पहना हुआ

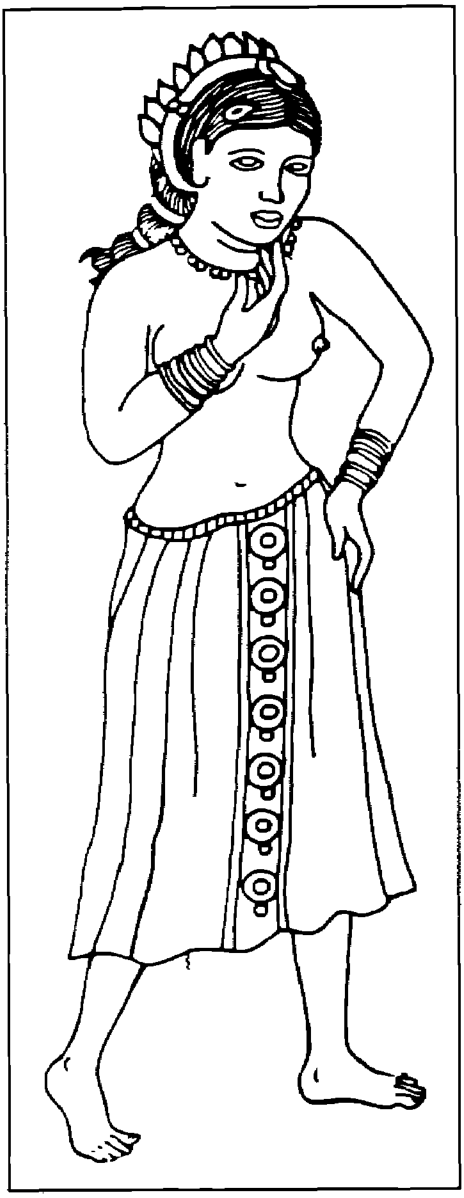
केयूर
साधारण चौड़े बाजूबंद

वलय
प्रत्येक कलाई पर एक कंगन

नूपुर
साधारण स्वरूप की पाजेब

शिरोभूषण
सिर के चारों ओर बंधा हुआ एक धारीदार रूमाल जिसमें पीछे की ओर गांठ लगी है, दाएं कंधे पर फुंदने लटकते दिखाई दे रहे हैं; सिर के पीछे पत्तों की सजावट है जिसका सिरा केंद्र में है, इसे जूड़े के रूप में केश-विन्यास में पिरोया हुआ है।

उसके हाथ में चढ़ावा है तथा जैसा कि उसके सिर के स्कार्फ से प्रकट है, वह विदेशी मूल की हो सकती है।



58. दरबारी महिला
(अजंता, गुफा I)

घाघरी
लहंगे का आरंभिक रूप जो घुटनों तक लंबा होता है तथा जिसमें नाड़ा लगा होता है।

वलय
एक के ऊपर एक हाथी दांत अथवा सीपी की चूड़ियां

हार
मनकों का हार

केश-विन्यास
जूड़े के साथ बीच की मांग जो गुद्दी पर रिबनों से सजी हुई है, सिर के चारों ओर फूल-पत्तियों की माला पहनी हुई



59. परिचारिका
(अजंता, गुफा XVI)

घाघरी
नाड़ेदार साधारण लहंगा

प्रतिधि
वक्षबंद जिसे पीछे की ओर बांधा जाता है।

कमरबंद
सजावटी, अतिरिक्त सहारे के लिए लहंगे के ऊपर पहना जाने वाला

विजयंतिका
कीमती पत्थर युक्त छल्लेदार मोतियों की लड़ियों का हार

केयूर
उत्कीर्ण रूप का बाजूबंद

वलय
चूड़ियां और मोती के कंगन

कुंडल
अंगूठी के प्रकार के बड़े कर्णफूल

केश-विन्यास
केश कंधों तक लंबे तथा खुले हुए

उसके हाथ में बड़ा ताड़ का पंखा है।



60. परिचारिका
(अजंता, गुफा I)

चोलका
सामने कपड़ा लगा चोली के रूप का ब्लाउज तथा रंगे-छपे कपड़े का V की शक्ल का बना 'पुलका-बंध'

अंतरीय
लहंगा शैली का, धारीदार कपड़े का

कुंडल
अंगूठी के प्रकार के कर्णफूल

वलय
साधारण चूड़ियां

केश-विन्यास
फूलों की माला लगा साधारण जूड़ा

(माला)



61. नृत्यरत किशोरी
(अजंता, गुफा I)

चोलका
सामने पेटबंद के साथ चोली जैसा सही काट का ब्लाउज; गहरे लाल रंग के जरी के कपड़े की लंबी आस्तीनें जबकि मध्य का भाग सफेद रेशम का है जो संभवतया पीछे रिबनों से बंधा हुआ है, जो दिखाई देते हैं।

अंतरीय
लहंगा शैली का रेशम का अंतरीय जिसमें बैंगनी, हरी और पीली धारियां सफेद रंग के समचतुर्भुज स्वरूप में

मुक्तावली
तीन लड़ियों का मोतियों का हार

हार
बड़े मनकों का हार

वलय
प्रत्येक कलाई पर दो साधारण और एक सजावटी चूड़ी

कंचल कुंडल
लटकनों के साथ सजे हुए कर्णफूल

मुकुट
सोने का शिरोभूषण

केश-विन्यास
फूलों की मालाएं लगा गुद्दी पर बड़ा जूड़ा तथा जूड़े के चारों ओर जड़ाऊ पिनों में अटकी मोतियों की अनेक लड़ियां अथवा सोने की जंजीर *(सरसरी)*



62. नौकरानी
(अजंता, गुफा I)

चोलका
बंधेज (बंधाई-छपाई) की दोहरी जाकेट, ऊपर की जाकेट अंगरखा शैली में छोटी आस्तीनों की; नीचे की जाकेट हरे रंग की लंबी आस्तीनों की

हार
दो हार, दोनों मनकों के परंतु बीच के हार का मनका भिन्न रूप का

केश-विन्यास
घुंघराले बाल चुटीले में पीछे बंधे हुए

विदेशी दिखाई देती है जैसा कि उसके साधारण केश-विन्यास और अलंकारिक आभूषण के अभाव से प्रकट है। अंगरखा खुला हुआ है, गले में बंधी बाईं किनारी को अंदर की सीधी किनारी से फिट करने के लिए मोड़ा गया है जो संम्वतया आधुनिक अंगरखे के रूप में बांधने के लिए है।



63. यशोदा
(देवगढ़)

अंगरखा
मध्य-जंघा तक लंबा बाईं ओर खुलने वाला कुरता जिसमें चारों कोनों पर गोट लगी हुई है; इसकी आस्तीनें लंबी हैं तथा गोट फारसी शैली में चौकोर है।

घाघरी
कई कली का घाघरा जिसे कूल्हे पर नाड़े से बांधा जाता है

कंठ
चपटा भारी छोटा हार

वलय
बाईं कलाई पर चूड़ी

मुकुट
पेशानी पर शिरोभूषण जैसा आभूषण

उत्तरीय
सिर पर पहना हुआ तथा कंधों के पीछे बाईं ओर लटका हुआ, सजी हुई किनारें

केश-विन्यास
बीच की मांग में संभवतया एक भारी बटी हुई गोल गद्दी जो बालों की बहुत छोटी चुन्नटों में गुंथी होती है; यह उत्तर भारत की कुछ स्त्रियों द्वारा सिर का पल्लू यथास्थान ऊंचा रखने के लिए आज भी उपयोग में लाई जाती है तथा यह सिर के पल्लू को राजसी प्रभाव प्रदान करती है।

सिर को पल्लू से ढकना संभवतया पारथियन/साईथियन मूल का रिवाज है तथा यह अजंता में बिरले ही दिखाई देता है।



64. कुमारी
(अजंता, गुफा XVI)

अंगरखा
लंबी आस्तीन का कुरता जिसे संभवतया बाईं ओर खोला जाता है, खोलने का यह शिगाफ नोकदार किनारे तक जाता है।

हार
एक साधारण जंजीर

कुंडल
अंगूठी के स्वरूप के बड़े कर्णफूल

उत्तरीय
सिर पर पहना हुआ तथा बायां भाग पारथियन अथवा साईथियन शैली में कंधों के नीचे झूलता हुआ

केश-विन्यास
जैसा रेखाचित्र 63 में दिया हुआ है।



65. परिचारिका
(अजंता, गुफा I)

रोब
सफेद कपड़े में, गोट पर पीली नीली झालर, टखनों तक लंबा; कालर के साथ आस्तीनें कसी हुई; आस्तीनों की गोट और कालर की किनारों पर कसीदाकारी की हुई; बाजू पर 'त्रिज-बंद' गोटे की पट्टी, पीछे खुलने वाले भाग में हवा में लहराता रिबन

शिरोभूषण
लाल रंग के कपड़े (चौड़े कपड़े अथवा मखमल) की गोल टोपी जिसकी सफेद किनारों पर फर या ऊन लगी है तथा केंद्र में सफेद पंख हैं।

प्रायः इसे फारसी-राजदोत्य दृश्य के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है, परंतु यह आकृति मध्य-एशिया की तूरानी तारतारी प्रतीत होती है। तूरानी तारतार अपनी पोशाक के संबंध में फारस से प्रभावित थे जैसा कि 'त्रिज-बंद' और हवा में लहराते रिबनों तथा गोल टोपी से प्रकट है।



66. सम्राट
(अजंता, गुफा XVII)

अंतरीय
लहंगा शैली में पहना जाने वाला धारीदार छोटा अंतरीय जिसका लंबा सिरा बैठने की गद्दी पर दिखाई देता है।

हार
रत्नों का छल्लेदार हार

शुद्ध एकावली
केंद्र में रत्नजटित मोतियों का हार

केयूर
अलंकृत बाजूबंद जिसके लटके हुए छल्लों पर जरदोजी का काम किया हुआ है।

वलय
अलंकृत बाजूबंद, प्रत्येक कलाई पर एक

अंगुलीय
छोटी अंगुली की अंगूठी

कुंडल
अलंकृत कर्णफूल

किरीट
अलंकृत प्लेट और मूलरूप से धातु का शिरोभूषण

हार पर रेशमी बंध दाएं कंधे से दिखाई देते हुए



67 अनुष्ठाता
(अजंता)

कंचुक

लंबी आस्तीनों का सामने खुलने वाला गोल गले का साधारण कुरता; संभवतया पिंडली तक लंबा

उत्तरीय
कमर के चारों ओर लपेटा हुआ तथा उपवीत फैशन में बाएं कंधे के ऊपर डालकर अंतिम छोर बाएं बाजू पर पड़ा हुआ

बाली
साधारण अंगूठी के स्वरूप के कर्णफूल जिनमें मोती लटके हुए हैं।

हारयष्टि
बड़े मोतियों का हार

कंठी
साधारण कंठी

केश-विन्यास
पीछे की ओर कंघी से संवारे हुए लंबे केश



68. प्रबंधक
(अजंता, गुफा XVII)

कंचुक
लंबी आस्तीन तथा सामने से खुलने वाला धारीदार सफेद देशज कुरता; संभवतया टखनों तक लंबा

चद्दर
जोड़ी हुई पट्टियों के स्वरूप का सजावटी कपड़ा उपवीत फैशन में बाएं कंधे के ऊपर तथा दाएं बाजू के नीचे पहने जाने वाली चद्दर

कंठी
मनके-लगी मुड़े तारों की कंठी

शिरोवस्त्र
थोड़े-थोड़े अंतर पर रिबन-लगी चौड़े कपड़े की पगड़ी, प्रबंधक द्वारा कार्यालय के चिह्न के रूप में पहनी जाने वाली



69. **प्रहरी**
(अजंता, गुफा II)

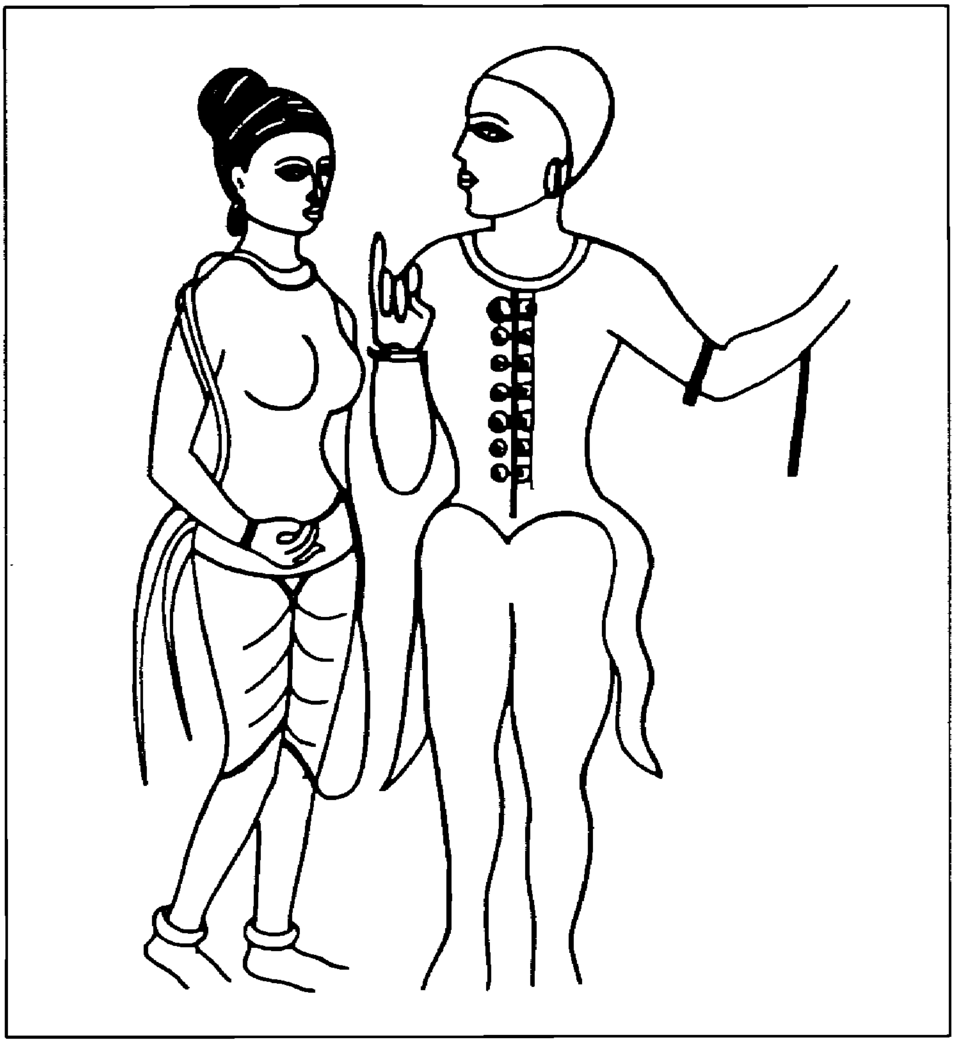
कंचुक
चार किनारों वाला मध्य-पिंडली तक लंबा कुरता, V की शक्ल का गला तथा लंबी आस्तीनें, सितारों की बिंदिया लगे स्वरूप का कपड़ा

पायजामा
चूड़ीदार शैली में इकट्ठा किए हुए पाएंचे

शिरोवस्त्र
टोपी

कायबंध
कमर पर बंधा कमरबंद

इस कंचुक में कुषाण-पारथियन अधो-कुरते जैसी चौकोर गोट होती है जो क्षत्रपों सहित सभी साईथियन प्रजातियों और क्षत्रपों में सामान्य थी। इसमें देशज प्रभाव भारत में ऋतु परिवर्तन के अनुकूल मनपसंद बारीक और अधिक सजावटी कपड़े के उपयोग तथा राजदरबार में समृद्ध जीवनयापन के तौर-तरीकों के कारण था। आभूषणों का अभाव विदेशी होना दर्शाता है।



70. सम्राट और साम्राज्ञी
(गुप्त कालीन स्वर्ण मुद्राएं)

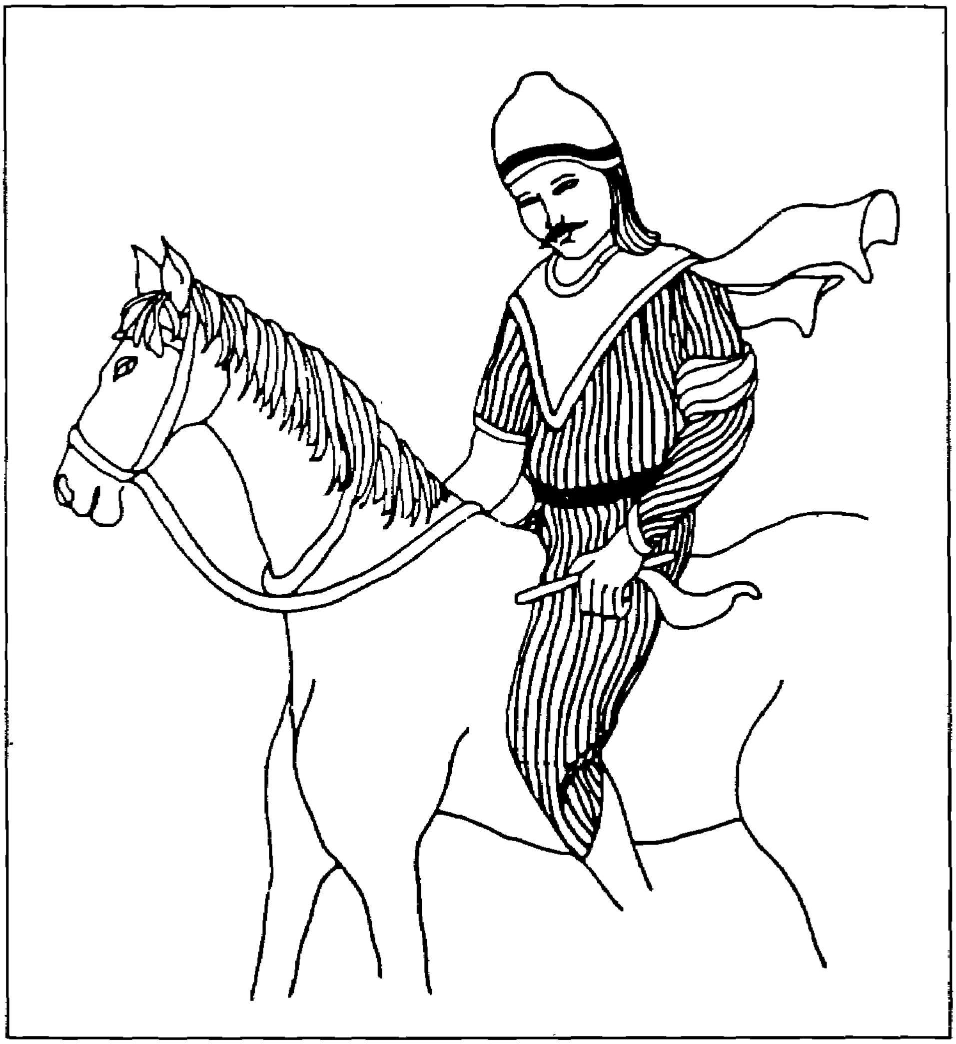
चोगा
कुषाणों का चुस्त कोट जिसमें सजावटी बटनों की ऊपर से नीचे एक कतार है जिन्हें मध्य में बंद किया जाता है, सामने खुलने वाले दोनों भागों को एक साथ करके बटन लगाए जाते हैं तथा कमर की किनार का सिरा केंद्र में एक नोक पर आकर ठहरता है।

पायजामा
पायजामों में घुटनों पर सलवट दिखाई नहीं देती।

शिरोवस्त्र
चुस्त टोपी

कर्णफूल
बटन शैली के

साम्राज्ञी देशज वेशभूषा में हैं, जैसा कि उनके अंतरीय और उत्तरीय से प्रकट है, केशों का जूड़ा सिर की चोटी पर है। लिच्छवी जनजाति की स्त्रियों जैसे टखनों में नूपुर पहनती हैं।



71 घुड़सवार
(अजंता, गुफा XVI)

क्वाबा
पिंडलियों तक लंबा धारीदार कोट जिसमें नोकदार कालर तथा बाजुओं पर 'त्रिज-बंद' गोटा लगा है; हवा में लहराते रिबन के बंध पीठ के पीछे दिखाई दे रहे हैं।

शिरोवस्त्र
बंद के साथ गुंबद की जैसी उभरी टोपी

पट्टा
कमर पर पहना हुआ

संभवतया मंगोलियाई नस्ल का तूरानी तारतार। उनकी वेशभूषा ईरानियों से बहुत मिलती-जुलती है, जिनसे 'त्रिज-बंद' की गोटा-किनारी, नोकदार कालर और हवा में लहराते रिबन उद्भूत हुए। संभवतया ढीले-ढाले पायजामे जिनके पाएंचे बूटों में पेवस्त होते थे, पहने जाते थे।



72. पैदल सैनिक
(अजंता, गुफा XVII)

चोलका
आधी आस्तीन की सीना ढकने वाली छोटी जाकेट और गोटे की किनार लगी आस्तीन

अंतरीय

किनारों के साथ धारीदार कपड़े का छोटा अंतरीय

कंगन
प्रत्येक कलाई पर एक कंगन

केश-विन्यास

कंधों तक लंबे केश : बिना किसी शिरोवस्त्र के

उपकरण
भाला तथा गैंडे की खाल की आयताकार मुड़ी हुई ढाल

गुप्त काल की सेना के महावत और पैदल सैनिक एक ही जैसी वर्दी पहनते थे। पूर्वोल्लिखित कभी-कभी सोने की धारियों के अपने अंतरीय तथा टोपी अथवा सिर पर लगी पट्टिका से अधिक शोभित होते थे।



73. **प्रहरी**
(अजंता, गुफा XVII)

क्वाबा
विदेशी मूल के पिंडली तक लंबे इस कुरते में बाजुओं पर फारस के स्वरूप का नोकदार कालर और 'त्रिज-बंद' गोटे की गोट होती है।

कमरबंद
कमर पर बांधा जाने वाला

कुंडल
प्लेट के स्वरूप के कर्णफूल

केश-विन्यास
सिर पर बड़ी चोटी की गांठ में बांधे हुए

उपकरण
अंडाकार ढाल और मुड़ी हुई तलवार यद्यपि यह वेशभूषा विदेशी है, केश-विन्यास, तलवार और कर्णफूल देशज हैं। यह संभवतया विदेशी वर्दी थी जिसे गुप्त सेना द्वारा अपना लिया गया था।



74. भिक्षु

(अजंता, गुफा XVI)

अंतरवास

यह अधोवस्त्र प्रायः 36 इंच चौड़ा और ढाई गज लंबा होता था। तथा इसे कमर के चारों ओर बांधा जाता था जहां एक कमरबंद से इसे रोके रखा जाता था अथवा नाड़े से बांधा जाता था।

उत्तरासंग

यह ऊपर पहना जाने वाला वस्त्र एक छल्ले के रूप में कंधे पर डाला जाता है।



75. दरबारी महिला
(ग्वालियर संग्रहालय)

केश-विन्यास
केश बीच की मांग के साथ संवरे हुए, बीच की मांग में मुकुट (शिरोभूषण) के साथ ललाट पर पड़ा आभूषण जुड़ा हुआ तथा गुद्दी के बाएं ओर रत्नजटित वेणी; तत्पश्चात वेणी एक पट्टिका के रूप में सिर के मुकुट के चारों ओर बंधी हुई

मुकुट
सोने अथवा चांदी की नक्काशी का अत्यंत सजावटी जिसके छोटे लटकन ललाट पर झूलते हुए

कुंडल
चक्र जैसे बड़े कर्णफूल

हारयष्टि
बड़े मोतियों की एक लड़

कंठी
केल्टिक मूल के मुड़े हुए तार की कंठी



76. महिला उपासिका
(अजंता, गुफा VI)

केश-विन्यास
ललाट पर पड़े छोटे छल्लों के साथ सिर के मुकुट पर सजी-धजी शैली में संवारे हुए केश

रत्नाजली
सिर के चारों ओर अलंकृत मुकुट जिसके केश-विन्यास में मोतियों की लड़ियां लगी होती हैं; ललाट पर मध्य में लगाया जाने वाला एक आभूषण है जिससे मोतियों की लड़ियां लटकी हुई हैं।

माला
कान के ऊपर बड़े फूलों की सजावट केश-विन्यास को अतिरिक्त अलंकरण देती है।

कुंडल
बहुत बड़े गोल चक्र जैसे कर्णफूल

बाली
मोती-लटके छोटे कर्णफूल जो कान के ऊपरी भाग में पहने जाते हैं।

शुद्ध एकावली
केंद्र में एक रत्नलगा मोतियों का हार, इसमें रिबन की बांधनी होती है।



77. सम्राट
(अजंता, गुफा I)

केश-विन्यास
छोटे केश

मुकुट
फूलों के आधार का शिरोभूषण जिसमें छल्लों में लगे मोती लटके हुए हैं।

बाली
कर्णफूल जिसमें अलग से मोती और नीलम लटके हुए हैं।

वलय
कलाइयों में विभिन्न प्रकार के कंगन

सूत्र
गले में साधारण जंजीर

उसने भूरे रंग की धारीदार रेशमी वेशभूषा पहनी हुई है। वह तश्तरी में बुद्ध को कमल के फूल चढ़ा रहा है जो ढके हुए अथवा चित्रित डिजाइन में हैं।



78. राजकुमार

(अजंता, गुफा XVII)

केश-विन्यास

ऐसा लगता है कि केश कंधों तक लंबे हैं तथा गुद्दी पर ढीली गांठ में बंधे हुए हैं; ललाट पर छल्लों के साथ रूढ़ शैली में रिबनों से बंधे हुए।

शिरोवस्त्र

धारीदार कपड़े की मुड़ी हुई पगड़ी अथवा अंतराल से वेणी के साथ बंधी हुई; दोनों ओर रत्नजटित जड़ाऊ पिनें तथा चोटी पर मध्य-आभूषण

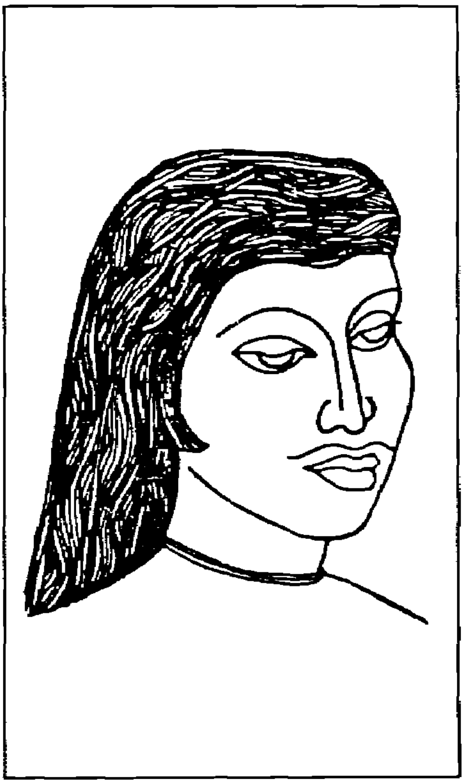
कुंडल

चक्र के प्रकार के साधारण कर्णफूल

मुक्तावली

एक लड़ी का मोतियों का हार

←┘



79. युवक

(अजंता, गुफा XVII)

केश-विन्यास

साधारण, कंधों तक लंबे, बिना मांग के पीछे समेटे हुए तथा ढीले छोड़े हुए; कान पर एक छोटी लट

└→

शब्दावली

अंगड़	कुंडलित सर्प के जैसा बाजूबंद
अंगरखा	बगल में बांधा जाने वाला कुरता
अंगुलीय	अंगूठी
अंतरीय	अधोवस्त्र
अजिन	मृग अथवा बकरे का चर्म
अजिनयज्ञोपवीत	हिंदू संन्यासियों द्वारा बाएं कंधे पर पहना जाने वाला मृगचर्म
अटकन	रत्नजटित हार
अर्द्धोरूका	स्त्रियों द्वारा पहना जाने वाला लंगोटी जैसा जांघिया
उपवीत	बाएं कंधे पर दाएं बाजू के नीचे पहना जाने वाला ऊपरी वस्त्र
उर्ण	बुद्ध में पूर्णता का प्रतीक भौंहों के मध्य बालों का गुच्छा
उत्तरासंग	बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला ऊपरी वस्त्र
उत्तरीय	बिना सिला ऊपरी वस्त्र अथवा रूमाल
उष्णीश	पगड़ी
एकावली	एक लड़ का मोतियों का हार
ओपासा	केशों का परांदा
कंकाल-कुंडल	लटकनों सहित अलंकृत कर्णफूल
कंगन	कलाई पर पहना जाने वाला आभूषण
कंचुक	कुरता
कंटोप	सिर तथा कानों को ढांपने की एक प्रकार की टोपी
कंठा	चौड़ा और चपटा छोटा, गले में पहना जाने वाला

कंबल	कंबल
कक्षबंध	एक रत्नजटित भारी कनकती जो कूल्हों पर तिरछी पड़ी रहती है।
कच्छा	लांग जिसमें अंतरीय टांगों के बीच से निकालकर इस प्रकार बांधा जाता है कि वह पायजामे जैसी वेशभूषा का रूप ले लेता है।
कटिसूत्र	कूल्हे पर पड़ी पट्टी को संभालने वाली करधनी
कड़ा	अंगूठी के प्रकार की साधारण पाजेब
कर्णफूल	पुष्परूपी कर्णफूल
कर्णिका	कर्णफूल
कनक-कमल	पूर्ण खिले कमल के फूल के स्वरूप के मानिक जड़े कर्णफूल, दक्षिण भारत में आज भी इनका प्रचलन है।
कबरीबंध	साधारण केश-सज्जा जिसमें केश जूड़े अथवा चोटी में गूंथे जाते हैं।
कमखाब	रेशम तथा सोने अथवा चांदी के तारों से परस्पर बुना हुआ कपड़ा
कलानिका	टांगों के बीच पहनकर कूल्हों के चारों ओर लपेटा जाने वाला अंतरीय
कलाबक	कई कलाबों की डोरी का कमरबंद
कांसी	घुंघरू लगे कमरबंद
कायबंध	कमरबंद, पेटी
किंकिणी	छोटे घुंघरू लगी पाजेब
किरीट	मुकुट, एक प्रकार का सिर का आभूषण
कुंडल	साधारण कुंडल अथवा गोल कर्णफूल
कुरता	पारथि, कुषाण, साइथियन-मूल का अंदर का कुरता जिसमें चारों किनारों पर गोटा लगा होता है तथा झालरदार आस्तीन होती है।
कुशालक	बौद्ध भिक्षुओं का कमर पर बांधने का कपड़ा
केयूर	ऊपर के बाजू का बाजूबंद
केशपाश	केश शैली जिसमें केशों को कुंडलित कर लंबी गांठ में सिर के निकट पाश में लपेटा जाता है।
केशयक	उच्च कोटि का सूत अथवा रेशम

कोश	तलवार की म्यान
कोशेय	एक प्रकार का रेशमी वस्त्र
खड्ग	तलवार
खड्गवाहिनी	राजसत्ता की महिला परिचारिका जो राजसी तलवार अपने कंधों पर लेकर चलती थी।
गदा	भारी गदा
गुर्णकुंतल	पुरुष केशों को संवारने की एक शैली, कंधे तक लंबाई, ढीले लटके हुए घुंघराले केश, यदा-कदा सिरबंद अथवा मोतियों की लड़ी से बंधे हुए
घाघरी	सिली हुई साधारण घाघरी
चंवरी	याक पशु की पूंछ से निर्मित चंवर
चलन	ढीले अथवा कसे हुए पायजामे
चादर	लंबी शाल
चूड़ामणि	कमल के रूप का केशभूषण, पंखड़ियों में मोती और कीमती पत्थर जड़े हुए
चोगा	कुषाणों द्वारा कुरते पर पहना जाने वाला कोट
चोलका	सामने पेटबंद लगी छोटी चोली
चोली	छोटी चोली
चौलड़ी	चार लड़ों का हार
छत्र	छतरी, राजत्व की प्रतीक
छत्रधार	राजसी छतरी लेकर चलने वाले परिचारक
छन्नवीर	वक्ष का क्रासबेल्ट
जटाभार	हिंदू संन्यासियों द्वारा केशों की भारी चोटी की गांठ में लगाई जाने वाली चटाई की लटें
जांघिया	छोटा अधोवस्त्र
जामावार	ऊन पर रेशम के बेलबूटों के डिजाइन की महीन बुनी हुई आज की कमखाब
जालका	कवच बनाने में प्रयुक्त होने वाला धातु के तार की जाली का सांचा
झुमकी	लटकन लगे बड़े कर्णफूल
तरहरा	बड़े मोतियों की एक लड़
ताम्र	तांबा

तालपात्र	ताड़ के वृक्ष के पत्ते के डंठल को मोड़कर कानों की लौ में पिरोने के लिए बनाया गया कर्णफूल
तिलड़ी	तीन लड़ियों का हार
तुलाकोटि	दो सिरों के मिलन-बिंदु पर अंत में बढ़ाकर जोड़ी गई भारी पाजेब
तुलापांसी	मध्य भारत का हल्के भार का सूती कपड़ा
तोक	मूलतया केल्टिक मूल की सुनहले तारों की साधारण कंठी
त्रिजबंद	आस्तीन के ऊपर के भाग की सजावट के लिए अलंकृत गोटा
देहरी	चक्रिका के प्रकार का कर्णफूल
धनुष	धनुष
धमीलिया	पुष्पों, मोतियों तथा रत्नों से सज्जित केश-विन्यास
नाड़ा	लहंगे की मोरी में लगा नाड़ा जो उसे कमर पर थामे रहता है।
निकोला	पलंग की रूपांकित चादर
निश्क	सिक्कों का हार
नीवी बंध	कमर पर अंतरीय बांधने के लिए लगाई जाने वाली आरंभिक गांठ
नूपुर	पाजेब
पचलड़ी	पांच लड़ियों का हार
पटका	बेल-बूटे कढ़ा कमर का पटका जिसे अंतरीय के ऊपर खोंसा जाता है।
पट्टाबंध	पगड़ी को यथास्थान बनाए रखने के लिए सोने की अलंकृत पट्टी
पट्टिका	रिबन जैसा कशीदाकारी का अलंकृत चपटा कमरबंद
पदपत्र	मोजा-बंद जैसा जंघा का आभूषण
पात्र	भिक्षा पात्र
पीढ़ा	लकड़ी की छोटी नीचे पावे की कुर्सी अथवा चौकी
पुतल्य	महाराष्ट्र का सोने के समकालीन सिक्कों का हार
पुलकबंध	गुजरात और राजस्थान का बंधेज का काम
प्रच्छादपटा	पलंग की रूपांकित चादर

प्रतिधि	वक्षबंद
प्रवेणी	केश वेणी
फलक	चौकी जैसे रत्न
फलकवलय	चौकी जैसे रत्नजटित कंगन
फलकहार	अंतराल से जड़े चौकी जैसे रत्नों का हार
बाजूबंद	बाजू पर ऊपर पहना जाने वाला आभूषण
बाली	मोतियों की लड़ लगे अंगूठी जैसे कर्णफूल
बिंदी	ललाट का आभूषण
बैशिल्क	नमदे की नोकदार साईथियन टोपी
भैरनिवसनी	लहंगे का आद्य रूप, कमर के चारों ओर कलियों में कमरबंद से बांधा जाने वाला मोरी लगा वस्त्र
मक्रिका	मत्स्य-मकर रूप का केशाभूषण
मणिनूपुर	माणिक जटित पाजेब
मंजीरा	घुंघरुओं की बजने वाली पोली पाजेब जो चलने पर टनटन की ध्वनि करती है।
मांगलाल्य	सोने के सिक्कों का रत्नजटित दक्षिण भारत का हार
माला	पुष्पों की माला
माल्य	सोने के सिक्कों से बना दक्षिण भारत का हार
मुक्तयक्षोपवीत	मोतियों का बना पवित्र धागा
मुक्तावली	मोतियों की एक लड़ी का हार
मुकुट	सिर पर पहना जाने वाला आभूषण
मुकुटजाल	केशों को सजाने के लिए जूड़े पर पहनी जाने वाली मोतियों की जालावली
मुरज	दोनों सिरों पर चमड़े की घुंडी लगा कमरबंद
मेखला	कमरबंद, कूल्हे की पेटी
मौली	पगड़ी
मौलीबंद	पगड़ी पहनने की एक अलंकृत शैली
मौलीमणि	पगड़ी का रत्नजटित जड़ाऊ बकलस
यज्ञोपवीत	पवित्र धागा
यष्टि	रत्न और स्वर्ण मनकों का हार जिसमें मध्य का मनका अपेक्षाकृत बड़ा होता है।
रत्न	कीमती पत्थर

रत्नाजली	गोटे और मोतियों का जाल जो स्त्रियों द्वारा जूड़े के चारों ओर पहना जाता है।
रत्नावली	जूड़े के चारों ओर पहना जाने वाला रत्नजटित जाल
रत्नांगुलीय	कीमती पत्थर जड़ी अंगूठी
रसन	जुड़ी हुई जंजीरों अथवा मोतियों, मनकों या कीमती पत्थरों की लड़ियों से बनी करधनी
रालका	गलीचा अथवा कालीन
रुपया	चांदी
लहंगा	लहंगे की एक शैली जिसमें अंतरीय लहंगे की तरह कूल्हों के चारों ओर पहना जाता है।
लंगोटी	कपड़े की पतली लंबी चीर जिसे कमर से लपेटकर टांगों के बीच से निकालकर बांधा जाता है।
लंबनम	लंबा हार
वल्कल	हिंदू संन्यासियों द्वारा पहने जाने वाले वृक्ष की छाल के बने वस्त्र
वलय	कंगन
वेधक	साधारण कमरबंद
वैकक्ष	वक्ष पर आड़ी-तिरछी पड़ी मोतियों की दो लंबी लड़ियां
शिरस्त्र	कंटोप
शिरस्त्रजाल	कंटोपा
शुद्ध-एकावली	मध्य में रत्न जड़ा मोतियों का हार
स्तनम्सुक	फारस से प्रभावित घुटनों अथवा जंघा तक लंबा कुरता
स्वर्ण	सोना
सतलड़ी	सात लड़ियों का हार
समकक्षिका	बौद्ध भिक्षुओं की बक्कल लगी पेटी
समघटी	बौद्ध भिक्षुओं का चोगा
सांकल	मोटी जंजीर जैसी पाजेब
सितारा	सितारे के रूप का स्त्रियों का ललाट का आभूषण
सिनाकुल	बेबांह का धातु का कवच, संभवतया चीनी मूल का
सृज	पुष्पों की माला
सूत्र	गले की जंजीर
हार	हार

हारवष्टि	बड़े मोतियों का हार
हिमरू	मुख्यतया सूती ताने से महीन बुनी आज की कमखाब
हिरण्य	सोना
हेमसूत्र	मध्य में पत्थर जड़ी गले की सोने की जंजीर
हेमावेकक्ष	वक्ष पर आड़ी पड़ी पुष्पों अथवा मोतियों की दो लंबी मालाएं, मुख्यतया स्त्रियों द्वारा पहनी जाने वाली

संदर्भ-ग्रंथ सूची

सामान्य ग्रंथ

कोडरिंगटन, के.डे.बी. : *एन्शिएंट इंडिया,* लंदन, 1926

गोएत, एच. : *इंडियन* (आर्ट आफ द वर्ल्ड) न्यूयार्क, 1959

चंद्र, डा. मोती : *कास्ट्यूम्स, टेक्सटाइल्स, कास्मेटिक्स एंड क्वाफ्यूर इन एन्शिएंट एंड मीडिअवल इंडिया,* दिल्ली, 1973

चंद्र, डा. राय गोविंद : *स्टडीज इन दि डेवलपमेंट आफ ओर्नामेंट्स एंड ज्वैलरी इन प्रोटो-हिस्टोरिक इंडिया,* वाराणसी, 1964

ज़िम्मर, एच. : *दि आर्ट आफ दि इंडियन एशिया,* न्यूयार्क, 1955

थापर, रोमिला : *हिस्टरी आफ इंडिया,* खंड-1, पेंग्विन, आस्ट्रेलिया, 1966

बाशम, ए.एल. : *द वंडर दैट वाज इंडिया,* लंदन, 1956

बृज भूषण, जे. : *इंडियन ज्वैलरी, ओनमिंट्स एंड डेकोरेटिव डिजाइन्स,* मुंबई, 1958

मजूमदार, आर.सी. (संपा.) *दि हिस्टरी एंड कल्चर आफ दि इंडियन पीपल,* 7 खंड, मुंबई, 1955-63

रौलीन्सन, एच. जी. : *इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया एंड दि वेस्टर्न वर्ल्ड,* कैम्ब्रिज, 1916

रौलैंड, बेंजामिन : *दि आर्ट एंड आर्किटेक्चर आफ इंडिया,* पेंग्विन, 1970

हेवेल, ई.वी. : *इंडियन स्कल्पचर,* कोलकाता, 1933

मौर्य-शुंग काल

कनिंघम, ए. : *दि स्तूप आफ भारुत,* लंदन, 1879

ग्रुन्वेडेल, अल्बर्ट : *बुद्धिस्ट आर्ट इन इंडिया,* क्वारिच, लंदन, 1901

फर्गुसन, जे. और बर्गेस, जे. : *केव टेम्प्लस आफ इंडिया,* लंदन, 1880

बर्गेस, जे. : *एन्शिएंट मानूमेंट्स, टेम्प्लस एंड स्कल्पचर आफ इंडिया,* 2 खंड, लंदन, 1892

बशोफर, एल. : *अर्ली इंडियन स्कल्पचर,* 2 खंड, न्यूयार्क, 1929

मार्शेल, जे. और फोशेर, ए. : *द मोनूमेंट आफ सांची,* 3 खंड, लंदन

सतवाहन : आरंभिक एवं अंतिम काल

बारेट, डी. : *स्कलप्चर्स फ्राम अमरावती इन दि ब्रिटिश म्यूजियम,* लंदन, 1954

बर्गेस, जे. : *दि बुद्धिस्ट स्तूपास एट अमरावती एंड जग्गय्यपेट,* ए.एस. आई., लंदन, 1887

म्यूजियम एन.एस.जी.एस., *जनरल सेक्शन,* खंड 4, मद्रास, 1942

मार्शेल, जे. : *तक्षिला,* 3 खंड, कैम्ब्रिज, 1951

राव, पी.आर. रामचंद्र : *दि आर्ट आफ नागार्जुनकोंडा,* मद्रास; 1956

लौंगर्सट, ए.एच. : *दि बुद्धिस्ट एंटीक्विटिज आफ नागार्जुनकोंडा,* ए.एस.आई. मेमो नं. 54, दिल्ली 1938

सिवारामामूर्ति, सी. : *अमरावती, स्कल्पचर्स इन दि मद्रास म्यूजियम,* बुलेटिन आफ दि मद्रास गवर्नमेंट

कुषाण काल

किर्शमैन, आर. : *ईरान, पारथियन्स एंड सासानियन्स,* 1912

घोष, ए. : *तक्षिला, एन्शिएंट इंडिया,* सं. 4

टार्न, डब्ल्यू. डब्ल्यू. : *दि ग्रीक्स इन बक्तरिया एंड इंडिया,* कैम्ब्रिज, 1938

फोशर, ए.एल. : *आर्ट ग्रेको–बौद्धिक ड्यू गंदारा,* 2 खंड, पेरिस, 1905-18

फोशर, ए. : *बिग्निन्गस आफ बुद्धिस्ट आर्ट,* लंदन, 1918

बर्गेस, जे. : *गांधार स्कल्पचर्स, जर्नल आफ इंडियन आर्ट,* खंड 8, लंदन, 1898-1900

बुसाली, एम. : *पेंटिंग आफ सेंट्रल एशिया,* जिनिवा, 1963

पुरी, बी.एन. : *इंडिया अंडर दि कुषाणस,* मुंबई, 1965

मार्शेल, जे. : *तक्षिला,* 3 खंड, कैम्ब्रिज, 1951

मार्शेल, जे. : *दि बुद्धिस्ट आर्ट आफ गांधार,* कैम्ब्रिज, 1960

रौलिन्सन, एच.जी : *इंडिया : ए शॉर्ट कल्चरल हिस्ट्री,* लंदन, 1937

स्टेन, औरेल : *इनरमोस्ट एशिया,* आक्सफोर्ड, 1929

स्टेन, औरेल : *ऑन एन्शिएंट सेंट्रल एशियन ट्रैक्स,* लंदन, 1933

हेकिन, जे. एवं अन्य : *रेचेर्चेस आर्कियोलोजिग्यूस ए बेग्राम,* पेरिस, 1939

गुप्त काल

अग्रवाल, वी.एस. : *टेराकोटा फिगरिन्स ऑफ अहिच्छत्र, एन्शिएंट इंडिया,* सं. 4, जुलाई, 1947 - जन. 1948

अग्रवाल वी.एस. : *गुप्त आर्ट,* लखनऊ, 1947

ग्रिफिथ्स, जे. : *पेंटिंग्स इन दि बुद्धिस्ट केव टेम्प्लस ऑफ अजंता,* 2 खंड, लंदन, 1896-97

फर्गुसन, जे. और बर्गेस, जे. : *केव टेम्प्लस ऑफ इंडिया,* लंदन, 1880

सिंह, एम. : *इंडिया : पेंटिंग्स फ्रॉम अजंता केव्स,* न्यूयार्क, 1954

वत्स, पंडित माधो सरूप : *दि गुप्त टेम्प्ल एट देवगढ़,* मेमोयर्स ऑफ आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, सं. 70, दिल्ली, 1952

याज़्दानी, जी. और अन्य : *अजंता,* 3 खंड, ऑक्सफोर्ड, 1931-46

अनुक्रमणिका

तरंग प्रिंटर्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित